ISSN 2455-0310

2.2

LISTED UNDER
UGC APPROVED LIST OF JOURNALS

DRJI
ISI Indexing | JIF Evaluation
JIFACTOR

A Bilingual, Bimonthly Multidisciplinary International e-Journal

TRANSFRAME

VOLUME 2, ISSUE 2

NOVEMBER-DECEMBER 2016

TRANSFRAME
E– JOURNAL

VOLUME 2, ISSUE 2

2016

CLICK ON ARTICLES TO READ

STUDY

4 विज्ञान: ज्ञान, साहित्य और अनुवाद -डॉ. जगदीश शर्मा

10 फ़िल्म एडिटिंग और अल्फ्रेड हिचकॉक- प्रवीण सिंह

12 सिनेमा और रंगमंच का अंतरसंबंध- सुरभि विप्लव

PERSONALITY

15 Tapan Sinha

CRITICAL EVALUATION

17 Ae Dil Hai Mushkil

20-25 Shivay, Parched and Anna– Rudra Bhanu PratapSingh

RESEARCH

26 अनुवाद और निर्वचन का अंत:संबंध : संकेतवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य - मेघा आचार्य

48 जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति में वर्तमान विकास का विकल्प - भारती देवी

CREATION

30 लेखनी : Rahul Satuna

31 तुलिका – Megha Acharya

32 कैमरा – Praveen Singh

INTERVIEW

33 Mr. Sasasiri Suwannathip Professor at Nakhon Ratchasima Rajabhat University, THAILAND

TRANSLATION

36 तेलुगु कहानी पगडालु का हिंदी अनुवाद - डॉ. एम. लक्ष्मीकांत

PRACTICE

43 प्रदर्शनकारी कला के संदर्भ में कॉपी राइट

RESEARCH

53 जनपद भिण्ड (म0प्र0) कें कृषि विकास में विपणि की भूमिका : एक भौगोलिक अध्ययन - डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय, शिवम् वर्मा

58 मधु कांकरिया के उपन्यासों में नारी दशा और दिशा - डॉ. चरण जीत सिंह सचदेव

62 Computer phobia among primary school teachers with respect to gender and locality-Dr. Sunita Arya

संपादकीय

....अपनी बात

जैसा कि विदित है ट्रांसफ्रेम अपनी यात्रा के द्वितीय वर्ष में प्रवेश कर चुका है. इस यात्रा में आप विद्व पाठकों के सहयोग के लिए हम बहुत आभार व्यक्त करते हैं. आशा है आपका प्यार इसी प्रकार हमारी यात्रा को नित नए पड़ाव की ओर अग्रेषित करता रहेगा.

हमेशा की तरह नए विचारों, आलेखों के साथ सृजन के रंगों में रंगा प्रस्तुत है ट्रांसफ्रेम का दूसरे वर्ष का दूसरा अंक।

-संपादक

TRANSFRAME

Bilingual, Bimonthly E– Journal

PUBLISHER

Praveen Singh Chauhan

Peace Aprt., Versova

Andheri (w) Mumbai 400061

T +91 9763706428

EDITOR

Megha Acharya

Praveen Singh Chauhan

LAYOUT- COVER DESIGN

Praveen - Megha

TRANSFRAME TEAM

Rudrabhanu Pratap Singh

Latika Chawada

Pradeep Tripathi

©All Rights Reserved

The publisher regret that they can not accept liability for error or ommisions contained in this publication, however caused. The opinions and views contained in this publication are not necessarily those of the publishers or editors. No part of this publication or any part of the contents there of may be reproduced or transmitted in any form without the permission of publishers in writing. An

GO DIGITAL, GO PAPERLESS, SAVE TREES, SAVE WATER

विज्ञानः ज्ञान, साहित्य और अनुवाद

अध्ययन

> विज्ञान कथा एवं फंतासी साहित्य में यह गुण पाया जाता है, जिसे अनुवादक अपनी कल्पना शक्ति से लक्ष्य पाठ में पुनर्प्रस्तुत कर सकता है। याद रखना होगा कि अनुवाद में फंतासी मूल उद्देश्य और कथा वस्तु से अलग न हो।

डॉ. जगदीश शर्मा

Associate Professor

School of Translation Studies and Training (SOTST)
Indira Gandhi National Open University (IGNOU)
Ph.+91 9654177491, 011 29571625

अनुवाद

अनुवाद एक जटिल प्रक्रिया है। किसी भी प्रकार के साहित्य का अनुवाद हो उसमें अनुवादक को विशिष्ट दृष्टि अपनानी पड़ती है। विशेष साधनों के साथ-साथ विषय विशेष की जानकारी भी अपेक्षित होती है। सर्जनात्मक साहित्य का अनुवाद हो अथवा साहित्येतर, अनुवादक के लिए निष्ठा और आदर्श का प्रश्न सभी स्थितियों बना ही रहता है। उसे यह निर्णय लेना करना पड़ता है कि किन विषयों के अनुवाद में निष्ठा का प्रश्न महत्वपूर्ण होगा और किन में उसके रूप, सौंदर्य तथा प्रवाह पर अधिक ध्यान दिया जा सकता है। प्रविधि और रणनीति निर्धारण में इन प्रश्नों पर गहराई से मंथन करना आवश्यक होगा। विज्ञान अपने आप में एक ज्ञान की विशिष्ट विधा है, जिसकी निर्मिति जगत के प्रत्यक्ष अनुभूत अनुभवों और शाश्वत तथ्यों पर होती है, जो सामान्यतः सार्वभौम होते हैं।

विज्ञान

विज्ञान किसी वस्तु अथवा पदार्थ के विषय में अनुभव, तर्क एवं विश्लेषण पर आधारित सार्वभौमिक ज्ञान होता है। अर्थात विज्ञान संबंधी नियम, धारणाएं और निष्कर्ष परिशुद्धता की कसौटी पर आधारित होते हैं। संस्कृत हिंदी शब्दकोष में दी गई परिभाषा में उसे ज्ञान, बुद्धिमत्ता, प्रज्ञा, विवेचन, कुशलता, सांसारिक अथवा लौकिक ज्ञान, व्यवसाय, नियोजन, तथा संगीत आदि के रूप वर्णित किया गया है। इस प्रकार विज्ञान का व्यापक अर्थ है।1 (वामन शिवराम आप्टे: 1986: 931)। विज्ञान एवं तकनीक साहित्य लेखन के अनेक प्रारूप हमें मिलते हैं। प्राचीन काल में इन्हें छंदोबद्ध पद्यात्मक शैली में लिखने की परंपरा थी। शुश्रुत और चरक संहिताएँ इसका प्रमाण है। हालाँकि वर्तमान प्रचालन में गद्य का ही प्रयोग विज्ञान लेखन के लिए हो रहा है, बाल विज्ञान लेखन में अवश्य ही आज भी पद्यात्मक शैली का प्रयोग हो रहा है। विज्ञान लेखन विषय-वस्तु प्रधान होने से तथ्य, सूचना तथा निश्चित अर्थपरक होता है। इसमें अभिधा की प्रधानता होने से एकार्थता बनी रहती है। रिचर्ड ने भाषा के सामान्यतः दो मुख्य प्रयोग बताए गए हैं, भावात्मक और वैज्ञानिक प्रयोग (रिचर्ड, 2001: 244-254, 34 अध्याय)।2 भावात्मक भाषा में जहाँ मानसिक राग और प्रवृत्तियां प्रभावी होती हैं वहीं वैज्ञानिक भाषा में संदर्भ, सिद्धांत और तथ्य प्रमुख होते हैं। रिचर्ड के अनुसार कोई कथन सत्य, अथवा असत्य के संदर्भ के लिए लिया जा सकता है और वास्तविक जगत से उसके संबंध पर आधारित होता है। कविता की भाषा में भावात्मक प्रयोग होता है, जबकि विज्ञान की भाषा में इसे संदर्भ और प्रत्यक्ष कथन अथवा अभिधात्मक शैली में प्रयुक्त किया जाता है। यह मूर्त भाषा होती है, जिसमें तथ्य और कथ्य दोनों अर्थात सरल शैली में प्रत्यक्ष अर्थ ग्रहण होता है। भाषा प्रयुक्तियों की दृष्टि से भी विज्ञान लेखन की भाषा एक विशिष्ट प्रयुक्ति क्षेत्र है जहाँ भाषा का प्रयोग एक निश्चित कर्म एवं उद्देश्य के लिए होता है। प्रयुक्ति विशेष की शैली के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती

है, जबकि सामाजिक शैली सरल, सहज और स्वाभाविक होती है। विज्ञान भी एक विस्तृत प्रयुक्ति क्षेत्र है। अतः कार्यक्षेत्र या विषय की तकनीक और पारिभाषिक शब्दावली का विशेष योगदान इसमें रहता है (गोस्वामी, 2008:303)। 3 विज्ञान एवं तकनीकी साहित्य का अनुवाद अधिक प्रत्यक्ष, विकल्प-रहित, और अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा कलात्मक दृष्टि से सामान्य होता है, जिसमें निर्वैयक्तिक शैली, सरल वाक्य विन्यास, परिवर्णी का प्रयोग और स्पष्टता आदि गुण प्रधान होते हैं(इल्यास, 1989:109) ।4 विज्ञान साहित्य के इन्हीं गुणों के कारण मायेव ओलोहन ने भाषा प्रकार्यों के संबंध में बूहलर द्वारा प्रतिपादित तीन प्रकार्यों – अभिव्यक्ति, प्रतिनिधित्व और अपील अथवा स्वीकार्यता का उल्लेख किया, जिसे रोमन याकोब्सन ने बूहलर के तीन प्रकार्यों के तारतम्य में भावात्मक, सुसुपष्ट और अधिभाषिक कहा है। रीस ने भी पाठ के प्रवर्तों का संकेत किया है। इन्हीं प्रवर्तों को हातिम और मेसन ने 'पाठ की प्रकृति अथवा विवर्त' से उद्धृत किया है।5 वैज्ञानिक पाठ के संबंध में यह जानना महत्वपूर्ण है कि उसके संदर्भात्मक पक्ष व्याख्यात्मक हैं या तर्कात्मक अथवा अनुदेशात्मक है, क्योंकि यह स्पष्ट हो जाने पर ही उसके अनुवाद की रणनीति तय करने का उद्यम प्रारंभ हो सकता है।

विज्ञान और साहित्य

विज्ञान और साहित्य का जहाँ निकटस्थ संबंध है वहीं दोनों ही बुनियादी रूप से कुछ गुणों के कारण दो विशिष्ट विधाएं भी हैं। विज्ञान में अभिधार्थ ही पर्याप्त एवं अभिप्रेत होता है, वहीं साहित्य में लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ अथवा अन्यार्थ के लिए अनंत संभावना रहती है। विज्ञान निजी और सार्वभौम अनुभवों तथा तथ्य आधारित तर्क एवं प्रश्न करता हुआ आगे बढ़ता है और सटीकता से किसी विवेकपूर्ण कारण से किसी तथ्य एवं सत्य की साधना करता है। जबकि साहित्य में रचनाकार प्रश्न से असीम, अनंत निस्सीम, कल्पना अथवा अन्तः प्रज्ञा, संवेगों और आदर्श एवं सार्वभौम के सत्य को तलाशने की कोशिश करता हुआ प्रज्ञापारमिता जैसी संकल्पना की संभ्यव्यता को उत्पन्न करता है, जबकि वैज्ञानिक पाठ में एक निश्चित लक्ष्य परिणाम सदैव सामने रहता है, जिसके लिए एक निर्धारित प्राप्ति कर्म बनाया जाता है, इसे प्रक्रिया कहा जाता है। विज्ञान जीवन के सत्य की चर्चा करता है और उसकी प्राप्ति के लिए एकाधिक विकल्प हो सकते हैं। जबकि साहित्य में रचनाकार अपनी सीमा और लक्ष्य स्वयं निर्धारित करता है और जीवन के यथार्थ से उसका पूरी तरह निबद्ध होना अनिवार्य नहीं होता। वह अपनी रचनाधर्मिता के प्रति स्वतंत्र है। अभिव्यक्तियों के लिए उसके पास काव्य-युक्तियाँ और साधन होते हैं, जिनसे अर्थ उत्कर्ष, चमत्कार और कपनालोक की अनंत संभावनाएं निर्मित की जा सकती हैं। वैज्ञानिक साहित्य में किसी सीमा तक सपाटता, प्रत्यक्षता और निश्चितता एवं मानकता बनी रहती है।

विज्ञान लेखन

विज्ञान संबंधी साहित्य की भारतीय भाषाओं में उपलब्धता हमारे देश की आज अपरिहार्य आवश्यकता है। आधुनिक काल में यह लेखन प्रथा दूसरे देशों में लंबे काल से चली आ है। रुसी, जापानी, चीनी, फ्रेंच, अंग्रेज़ी, स्पेनी और दूसरी अनेक भाषाओं में विज्ञान विषयों पर अनुवाद के साथ साथ मौलिक लेखन भी प्रचुर मात्रा में होता रहा है। परिणामतः ये देश वैज्ञानिक ज्ञान और प्रयोग में आगे रहे। स्वर्णिम अतीत के उपरांत भारत में दासता के कारण वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति बड़ी देर से प्रारंभ हुई (पालीवाल, 2004:90-93)।6 भारत में विज्ञान पर लेखन प्राचीन काल में चरम पर था और ज्योतिष, खगोल, युद्ध, धातु, आयुर्विज्ञान, शल्य कर्म, वास्तुशिल्प तथा अनेक दूसरे विषयों पर संस्कृत में लेखन किया जाता था, जिसके अरबी और यूरोपियाई भाषाओं में अनुवाद के कई प्रमाण हैं। परंतु विदेशी आक्रमणों और औपनिवेशकता के कारण यह लेखन परंपरा बाधित हुई। अतः आज भारत में विदेशी भाषाओं से तो विज्ञान विषयों के ज्ञान के अनुवाद की आवश्यकता है ही, परंतु अधिक आवश्यकता भारतीय भाषाओं में परस्पर अनुवाद और उनमें मौलिक लेखन की है। विज्ञान संबंधी भाषा सूत्र, चिह्न, प्रतीक, संकेत और अन्य विशिष्ट अभिव्यक्तियों का प्रयोग होता है, रासायनिकी प्रक्रिया में संक्षिप्तियाँ और सूत्र होते हैं, गणित के अंक (ग्रीक, रोमन, लैटिन आदि),

जीव एवं वनस्पति विज्ञान में चित्र, आरेख इत्यादि की बहुतायत होती है।

विज्ञान लेखन विशेष जानकारी के उद्देश्य से लिखा जाने वाला साहित्य होता है, जिसमें महत्वपूर्ण शोध परिणाम, निष्कर्ष और अन्वेषण परिणाम प्रदर्शित किये जाते हैं। इनकी भाषा विभिन्न तकनीकी शब्दों से प्रणीत वैज्ञानिक प्रकृति की होती है। इसमें तर्क-वितर्क, आपसी विवाद, सामूहिक विमर्श और निष्कर्ष तथा अंततः परिणाम संचयन होता है। विज्ञान लेखन के लिए जिन विभिन्न पद्धतियों का अनुसरण किया जाता है, उनमें शब्द प्रति शब्द, शाब्दिक और मूल सूचना अभिव्यक्ति प्रमुख है। मोर्को का मानना है कि विज्ञान का अनुवाद एक प्रकार का संघर्ष है जो अनुवादक और संपादक के बीच घटित होता, क्योंकि उत्तम अनुवादक एक अच्छा संपादक भी होता है(मार्को: 2002:188)7। विज्ञान अनुवादक और संपादक बेठानी थिविएर्जे विज्ञान विषयों के अनुवाद के लिए कुछ बिंदु निर्धारित करते हैं: इनमें स्पष्ट लक्ष्य, निश्चित नियम तथा चुनौतियों और कौशल के बीच विवेकशील पर्यायों का चयन शामिल हैं। उनके अनुसार विज्ञान विषयों में अनुवाद की संप्रेषणीयता प्रकृति के नियमों और भाषा के सिद्धांतों पर निर्भर करती है (थिविएर्जे:2002, 188)।8

मौलिक विज्ञान लेखक तथ्य एवं मूर्त अनुभवों से निबद्ध परंतु अभिव्यक्ति में स्वतंत्र होता है उसे अवश्य ही विशिष्ट चिह्नों की जानकारी होनी चाहिए और संकल्पनाएँ भी स्पष्ट होनी चाहिए। भाषा का सामान्य अधिकार उसकी मदद कर सकता है। हाँ लेखन की शैली ललित होगी या पद्यात्मक अथवा निबंधात्मक यह भी निर्णय करना आवश्यक है। किसी सीमा तक यह विज्ञान साहित्य की प्रकृति और उसके लक्ष्य-वर्ग की आकांक्षा से भी निर्धारित होता है। इसी से मौलिक लेखन की अपेक्षा वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करते समय अनुवादकों के समक्ष पाठ, विधा, प्रविधि और अनुवाद के संसाधनों से संबंधित अनेक प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं।

विधा एवं शैली - विज्ञान लेखन और उसके साहित्य में लेखन विधा एवं शैली का प्रश्न महत्वपूर्ण है। यदि साहित्य बाल-वर्ग के लिए है तो उसका अनुवाद लयबद्ध और पद्यात्मक हो तो तभी वह बाल-मनों को लुभाएगा और अपना उद्देश्य पूर कर पाएगा। ज्ञान ग्रंथियां सुकोमल मन में आसानी से उलझ सकती हैं। अतः उन्हें बच्चों के जगत से जोड़कर छोटे-छोटे खंडो में विभक्त कर व्यक्त किया जा सकता है। शोधपरक, गंभीर और उच्च विज्ञान संबंधी साहित्य अक्सर गद्य और भाषाई दृष्टि से संश्लिष्ट शैली में लिखा होता है, ऐसा विज्ञान की मूल संकल्पनाओं का स्वयम में ही संश्लिष्ट प्रकृति का होना है। लोकप्रिय विज्ञान लेखन विशिष्ट उद्देश्य के होता है, जबकि ललित विज्ञान लेखन सामान्य साहित्यिक शैली का अनुकरण वैज्ञानिक संकल्पनाओं और सूचना को रोचक तरीके से प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है। विज्ञान साहित्य के दीर्घजीवी उद्देश्यों के साथ साथ जन सामान्य में विज्ञान अभिरुचि उत्पन्न एवं विज्ञान साहित्य के प्रति पाठकों को आकर्षित करना यहाँ मुख्य लक्ष्य होता है। बहुधा सामान्य विज्ञान लेखन में औपचारिक शैली का प्रयोग देखने को मिलता है, परंतु कभी-कभी संवादी (अंतक्रियात्मक)विज्ञान साहित्य में मिश्रित शैली भी दिखाई देती है। अनुवादकों के लिए इस प्रकार के लेखन की भाषा को लक्ष्य वर्ग के लिए उनके मनो-अनुकूल बनाने में अवश्य ही श्रम करना पड़ता है। उन्हें अनुदित साहित्य में मूल के प्रति निष्ठित रहने के लिए न केवल आलोचना का सामना करना पड़ता है, अपितु उसे अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कई तकनीकों एवं साधनों का आश्रय भी लेना पड़ता है। परंतु यह अनुवादक की परीक्षा और योग्यता की कसौटी भी है। इस प्रकार की अनुदित भाषा में कथ्य के संप्रेषण, अंतर्वस्तु की शैली एवं भाषा की प्रयुक्तियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

संप्रेषण - विज्ञान साहित्य में सूचना प्रधानता होने से संप्रेषण उसका प्रमुख गुण है। मूल तथ्य एवं कथ्य यथासंभव अधिकाधिक स्पष्ट और सुगमता से संप्रेषित हो सके यह सुनिश्चित करना अनुवाद का लक्ष्य होता है। इसके लिए अनुवादक को अभिधा शैली में बिना भाव गुंफन के सीधे प्रवाहमान भाषा में मूल के कथ्य और उद्देश्य को व्यक्त करना होता है और इसमें केवल अभिधा शब्द शक्ति की ही भूमिका प्रधान होती है।9 लक्ष्य पाठक की सहिक्षित-सामाजिक पृष्ठभूमि और उसके अनुरूप पाठ की सरलता, सरसता

एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति अभिधेय अथवा मंतव्य को लक्ष्य भाषा में व्यक्त करने में मदद करते हैं।

वस्तुपरकता - विज्ञान लेखन अनुभव, निष्कर्ष और प्रमाणों पर आधारित होता है और इसका प्रत्यक्ष संबंध हमारे भौतिक जगत से होता है। साहित्यिक लेखन में व्यक्तिपरकता प्रधान हो सकती है और भाषा में भाव-गुंफन एवं बिंब, प्रतीक, उपमा, अलंकार आदि का प्राधान्य होता है तथा अर्थ ग्रहण कई बार लक्ष्य पाठक पर छोड़ दिया दिया जाता है, परंतु विज्ञान साहित्य के अनुवाद में सोदेश्यता का प्रश्न मूल होता है, जिसे सार्वभौम स्वीकृत तर्कों और विश्लेषणों से पुष्ट किया जाता है तथा स्वाभाविक प्रश्नों के माध्यम से इसे आगे बढ़ाया जाता है। अतः अनुवाद में भी इन गुणों एवं शैली को बनाए रखना आवश्यक है। अनुवादक अवश्य ही इसके लिए लक्ष्य वर्ग के अनरूप वाक्य संयोजना एवं अवधारणाओं की पुष्टि के लिए प्रयास कर सकता है परंतु मूल की रक्षा उसका सर्वोत्तम दायित्व रहेगा। ।

विज्ञान प्रौद्योगिकी की भाषा – पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग - विज्ञान का ही व्यवहारपरक पक्ष प्रौद्योगिकी के अंतर्गत आता है। अतः दोनों में ही विशेष प्रकार की भाषा का प्रयोग होता है। इसमें निश्चित अर्थ वाली शब्दावली का प्रयोग-प्राधान्य रहता है। परंतु विज्ञान साहित्य में एक कठिनाई यह है की वैज्ञानिक अभिव्यक्तियों के भी भिन्न-भिन्न विज्ञान क्षेत्रों में अलग अलग अर्थ मिलते हैं, जैसे कि – रिएक्शन reaction के लिए प्रतिक्रिया (भौतिकी), सूर्य क्रिया के कारण सूर्यमुखी पुष्प के सूर्योमुखता के कारण वनस्पति शास्त्र में अभिक्रिया और रसायन शास्त्र में अम्लों में परस्पर क्रिया होने से इसे अनुक्रिया कहा जाता है। अतः इसके लिए वैज्ञानिक एवं तकनिकी अथवा विज्ञान शब्दकोश की सहायता ली जा सकती है, ताकि ज्ञान विधा के अनुरूप सटीक पर्याय तलाशा जा सके। अनुवाद करते समय यह एक बड़ी चुनौती होती है। उल्लेखनीय हैं कि विज्ञान की प्रत्येक शाखा के अपने संकल्पना अनुरूप शब्द हैं जिनके अर्थ भी विशिष्ट होते हैं। Water के लिए पानी और जल ये दोनों ही पर्याय अलग-अलग अर्थ के द्योतक होते हैं। Soil के लिए मृदा, मिटटी दो अलग अलग अर्थ हैं। इसी पाकर पाइजन, टाक्सीन और वेनम अलग अलग शब्द हैं और इनके लिए विष, आविष तथा जीविष आदि पर्याय तलाशे गए हैं।10 (सक्सेना, 1993: 224-262)। अर्थ समानता, न्यूनार्थता और अर्थ उत्कर्ष आदि की सहायता से ऐसा किया जा सकता है। अतः समुचित पारिभाषिक शब्द चयन आवश्यक है। विज्ञान शब्दावली में अनेक शब्द संकल्पनाओं के अन्वेषकों पर रखे गए हैं, वाट (जेम्स वाट), डीज़ल (डीज़ल), पाश्चरीकरण (लुइस पाश्चर)। इसके साथ ही कुछ विज्ञान संबंधी शब्द मिश्रित संकलापनाओं पर आधारित हैं, जैसे की एलोपथी (अलोस एवं पाथोस) जिसका अर्थ अन्य पीड़ा। अधिकतर वैज्ञानिक साहित्य को ज्ञान प्रधान साहित्य के अंतर्गत रखा जाता है और इसमें संचित अनुभवों का बड़ा भंडार निहित होता है। इसलिए ज्ञानात्मक साहित्य स्वयं विज्ञान के अध्ययन का भी मूलभूत तत्त्व है। विज्ञान साहित्य के समान ही ज्ञान प्रधान साहित्य के लिए भी उपयुक्त दृष्टि और शास्त्रीय भाषा का निश्चित स्वरूप न होने के कारण उसके अनुवाद में जटिलताएं आती हैं।11 भाषा का तकनीकी प्रयोग अनेक प्रकार से आगे बढ़ता है। इसमें सामान्य व्याकरण नियमों का पालन, तथा तर्क और परस्पर संवाद अथवा प्रश्नात्मकता से विषय को गति देना शामिल रहता है। अर्थात 'कैसे' का सवाल सामने रहता है। इससे किसी प्रकार कि अतिरिक्त व्याख्या, विपर्यास तथा उल्ट फेर की संभावना समाप्त हो जाती है। इसे शिमड्ट12 (1971:59) ने बहु-कार्यता (पोली-फंक्शनलिटी) कहा है।

सरलता और सहजता - विज्ञान संबंधी अनुवाद में तथ्यों एवं सूचना की प्रधानता होती है जो परिणाम सापेक्ष एवं सिद्धि सापेक्ष होते हैं। इस कारण से कविता अथवा कहानी जैसे विषयों के अनुवाद का कलातमक और लालित्य पक्ष इसमें अपेक्षित नहीं है और न ही अभिव्यंजनात्मक अर्थ के लिए कोई अवकाश। परंतु यह भी सत्य है कि वैज्ञानिक साहित्य के अनुवाद में भी स्वच्छता, सरलता और प्रवाह का होना अनिवार्य है, ताकि पाठक विज्ञान की क्लिष्ट संकलापनाओं और सूत्रों के गुंफित अर्थ-ग्रहण के प्रति रुचि को बढ़ा सके इसके लिए भाषा और शैली में स्पष्टता, स्वच्छता एवं सहजता पर ध्यान देना आवश्यक। विज्ञान में निबंध, विज्ञान कथा लेखन तथा विज्ञान कविताएं भी समग्र वैज्ञानिक साहित्य का अंग होने से उनमें सूचना और तथ्यों को बनाए रखते हुए

अनूदित पाठ में आकलन एवं संकलन विशेष संयोजन में प्रस्तुत किया जा सकता है। मूल निष्ठता के साथ भाषाई कौशल विज्ञान–साहित्य को पाठकों में लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

तथ्य एवं अर्थ निश्चितता - वैज्ञानिक साहित्य में तथ्यों की पुष्टि और शुद्धता के कारण उसकी सत्यता एवं अर्थ संबंधी निश्चितता रहती है जो साहित्यिक दृष्टि से उसकी सीमा भी है, परंतु यही उसकी मूल अवधारणा की पुष्टि भी करती है जो इसके अभिधान को सार्थक करती है। अर्थात ऐसा ज्ञान जो स्वयं को प्रकृति के नियमों पर खरा उतार सके। इसलिए अनुवादक जब भी किसी वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद करेगा तो उसे अपने पर्यायों में किसी भी द्विविधा अथवा द्वयार्थकता या अनेकार्थकता का अवकाश रखने की छूट नहीं होती। इस प्रकार की भाषा में एक प्रकार की निर्वैयक्तिकता या तटस्थता का बोध रहता है, जिससे यह ज्ञान अपने में परिमार्जित एवं अक्षुण्ण रहता है। अनुवादक से भी यह अपेक्षा रहती है कि वह लक्ष्य पाठ में मूल पाठ इस इस गुण को बनाए रखे। हिंदी और भारतीय भाषाओं में विज्ञान लेखन की अधिक स्थापित परंपरा न होने से उसके लिए मानक शब्द, वाक्य संरचना के नियम नहीं बन पाए हैं इसी कारण कभी कभी अनूदित साहित्य में अटपटापन आ जाता है। विज्ञान साहित्य के अनुवादकों पर एक महत्वपूर्ण दायित्व यह भी होता है कि वैज्ञानिक साहित्य लंबे अरसे तक बना रहता है, लोग इसका अपने जीवन में विविध आयामों में अनुकरण करते हैं, संस्थान इसे अपने शोध कार्यक्रमों में अपनाते हैं। अतः इसका अनुवाद बड़ी सावधानी से मूल कथ्य एवं जानकारी में बिना किसी छेड़छाड़ के किया जाना चाहिए। अन्यथा सार्वभौम तथ्यों में विचलन से दूरगामी नकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हो सकते हैं।

सार्वभौमिकता - विज्ञान संबंधी नियम आम तौर पर देश काल की सीमाओं से बंधे नहीं होते। भौतिकी के नियम और पदार्थ (धातुएं, गति, ध्वनि, प्रकाश, गुरुत्वाकर्षण के नियम आदि), रासायनिक क्रियाएं और अधिकांश विज्ञान संबंधी नियम वैश्विक अथवा सार्वभौम रूप से इस पूरे उपग्रह पर लागू होते हैं। कुछ वानस्पतिक अथवा जैविक रूप भिन्न भौगोलिक परिस्थितयों में भिन्न भीं स्वरूप के हो सकते है जिसे हम जैव विविधता के नाम से जानते हैं। परंतु बुनियादी जीवन के सिद्धांत तो एक समान ही हैं। प्रजातियों की भिन्नता हो सकती है और उन्हें अलग अलग स्थान पर भिन्न नामों से भी जाना जा सकता है। अनुवादक को इनसे किसी प्रकार की कोई छेड़छाड़ करने की अनुमति नहीं होती है और इन्हें निश्चितता देने के लिए नित्यवाची अथवा नियतवाची क्रियात्मक भाषा में व्यक्त किया जाता है। अक्सर इसे 'परिवर्तन घटते हैं, ध्वनि तरंगों में विकर्षण होता है, प्रदूषित जल में बैक्टीरिया पायें जाए जाते हैं', जैसी नित्यतावाची क्रियायों (होता, होते, जाते आदि) में व्यक्त किया जाता है13 (सेठी, 2014:183-199)।

रोचकता - वैज्ञानिक साहित्य में भी किसी भी अन्य साहित्य के समान रोचकता का पुट होना आवश्यक है। हालाँकि अनुदित साहित्य में इस प्रकार का अभाव अक्सर देखा गया है। अतः अनुवादकों से विशेष अपेक्षा रहती है कि वे लक्ष्य पाठ में भी मूल की ही भांति तथ्यों की संयोजना एवं भाषाई स्वरूप इस प्रकार बनाएं कि भाषा में लक्ष्य पाठक / दर्शक रुचि को बनाए रखने में सक्षम हो। इसमें सरसता और रोचकता के लिए भाषाई लालित्य तथा कथानात्मकता के तत्त्व का प्रयोग किया जा सकता है। विज्ञान कथा एवं फंतासी साहित्य में यह गुण पाया जाता है, जिसे अनुवादक अपनी कल्पना शक्ति से लक्ष्य पाठ में पुनर्प्रस्तुत कर सकता है। याद रखना होगा कि अनुवाद में फंतासी मूल उद्देश्य और कथा वस्तु से अलग न हो। छूट लेने पर जहाँ मूल का विशिष्ट सौंदर्य नष्ट हो जाता है वहीं अतिरंजना से अनुदित पाठ बनावटी एवं तथ्य-इतर भी प्रतीत हो सकता है। कुछ स्थितयों में यह अनुपादेय भी हो सकता है।

संकेत चिह्न, सूत्र, समीकरण एवं आरेख - वैज्ञानिक साहित्य में अनेक प्रकार के समीकरणों, गणितीय प्रतीकों, चिह्नों, संकेतों और अभिव्यक्तियों के साथ संख्या संबंधी ह्रास या दीर्घता के प्रतीक दिए होते हैं। इनका भी अनुवाद करना मुश्किल होता है। इनके अंतर्राष्ट्रीय प्रचलन के कारण यदि इन्हें यथावत रख लिया जाए तो मूल का भाव अधिक सुगमता से व्यक्त हो सकता है। $(a+b)^2 =$

A2+B2+2AAB) अधिकतर रासायनिक तत्वों अथवा भौतिकी में धातुओं और खनिजों आदि के लिए भी सूत्र नाम प्रयुक्त कए जाते हैं, जैसे कि $NaCl$, Fe। Ag। ये सूत्र वैज्ञानिक अवधारणा के सूचक होते हैं और इनके अनेकविध प्रयोग मिलते हैं, समीकरणों के रूप में, बीज सूत्र रूप में तथा समीकरण के विस्तारित हल के रूप में। आरेख चिह्न कुछ विषयों में अधिक प्रयुक्त होते हैं, खासतौर पर जैव पदार्थों के विवरण देने में। कभी कभी आरेख का प्रयोग परिणाम एवं उपलब्धियों के तुलनात्मक परिमाण प्रदर्शित करने हेतु भी इस्तेमाल किया जाता है। इससे प्रस्तुति अधिक वस्तुपरक एवं अवगाह्य बन जाती है। इन सारी स्थितियों में अनुवादकों को कई प्रकार के निर्णय लेने होते हैं। कुछ मूल संकल्पनाओं के लक्ष्य भाषा में प्रचलित पर्याय रखने होते हैं तो कई बार लिप्यंतरण किया जाता है अथवा उन्हें यथावत मूल भाषा में भी रखा जा सकता है। यहाँ रोमन अक्षरों एवं संख्याओं का ही प्रयोग होता है। विज्ञान में अधिक, न्यून, बराबर, तथा अल्फ़ा, बीटा, थीटा, गामा, ओमेगा आदि के लिए अलग अलग (Αα Alpha, Ββ Beta, Γγ Gamma, δ Delta, Εε Epsilon, Ζζ Zeta, Ηη Eta, Θθ Theta, Ιι Iota, Κκ Kappa, Λλ Lambda, Μμ Mu, Νν Nu, Ξξ Xi, Οο Omicron, Ππ Pi, Ρρ Rho, Σσς Sigma, Ττ Tau, Υυ Upsilon, Φφ Phi, Χχ Chi, Ψψ Psi, Ωω Omega) चिह्न प्रयुक्त किए जाते हैं, इन्हें भी मूल रूप में यथावत रख लिया जाता है। **(.......शेष भाग अगले अंक में)**

संदर्भ

1. वामन शिवराम आप्टे. संस्कृत- हिंदी शब्दकोश, दिल्ली. मोतीलाल बनारसीदास.पृष्ठ: 931
2. आई ए रिचर्ड. रिचर्ड्स प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म. 2001 लन्दन, रूटलेज. अध्याय 34; 244
3. कृष्ण कुमार गोस्वामी. अनुवाद विज्ञान की भूमिका. 2008. दिल्ली. राजकमल, पृष्ठ:303
4. ए इल्यास. थेओरिएस ऑफ ट्रांसलेशन: थ्योरेटिकल इश्यूज एंड प्रैक्टिकल इम्प्लीकेशन. मोसुल. यूनिवर्सिटी ऑफ मोसुल. उद्धृत: ट्रांसलेशन डायरेक्टरी.कॉम
5. मायेव ओलोहन. साइंटिफिक एंड टेक्निकल ट्रांसलेशन. इन द रूटलेज हैंडबुक ऑफ ट्रांसलेशन स्टडीज. 2013. न्यू यार्क, रूटलेज.
6. रीतारानी पालीवाल. अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य. 2004. वाणी. दिल्ली पृष्ठ: 90-93
7. एन्न कांटी मार्कोस ट्रांसलेटिंग साइंटिफिक टेक्स्ट्स इन एनुअल मीटिंग रिपोर्ट्स. साइंस एडिटर. 2002. नबम्बर दिसम्बर वाल. 25, संख्या 6.
8. बेठानी थिएइएर्जे. ट्रांसलेटिंग साइंटिफिक टेक्स्ट्स इन एनुअल मीटिंग रिपोर्ट्स. साइंस एडिटर. 2002. नवंबर दिसंबर वाल. 25, संख्या 6
9. जगदीश शर्मा. वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद. इन अनुवाद. अंक 165. 2015, नई दिल्ली. भारतीय अनुवाद परिषद.
10. एस एम के सक्सेना. वैज्ञानिक साहित्य का अनुवाद : सामान्य ज्ञान. इन अनुवाद विज्ञान : सिद्धांत औरनुप्रयोग. संपा. नगेन्द्र. 1993. दिल्ली विश्वविद्यालय. पृष्ठ: 254-268.
11. नगीन चन्द्र सहगल. ज्ञान प्रधान साहित्य के अनुवाद की समस्याएं. इन अनुवाद विज्ञान: सिद्धांत एवं अनुप्रयोग . संपा. नगेन्द्र. 1993. दिल्ली. दिल्ली विश्वविद्यालय.
12. एस जे शिमड्ट. 1971. उद्धृत ट्रांसलेशन डायरेक्टरी.कॉम
13. हरीश कुमार सेठी. विज्ञान प्रौद्योगिकी साहित्य: अर्थ और आयाम. इन अनुवाद के क्षेत्र. दिल्ली. इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय. पृष्ठ: 183-199.

 ISSN 2455-0310

फ़िल्म एडिटिंग और अल्फ्रेड हिचकॉक

अध्ययन

अल्फ्रेड हिचकॉक एक महान निर्देशक थे। फ़िल्म इतिहास में वे रचनात्मक तरीकों से फ़िल्में बनाने के लिए जानें जाते हैं। उनकी फ़िल्में महान और लोकप्रिय मानी जाती हैं इसका मुख्य कारण है- फ़िल्म एडिटिंग तकनीकी, जिनका उपयोग उन्होने अपनी फिल्मों में किया। अल्फ्रेड हिचकॉक ने यह दिखाया कि क्यूँ और कैसे एडिटिंग से फिल्में बनती है। फ़िल्म एडिटिंग के बिना जो बचता है वो है शॉट्स और दृश्य। हम केवल शॉट्स और दृश्य के साथ कुछ नहीं कर सकते। हमे यह जानने की आवश्यकता होती है कि उन्हे किस प्रकार सही तरीके से एडिट करें कि दृश्य स्वीक्वेंस में हो और फ़िल्म निर्बाध रूप से चल सके। अल्फ्रेड हिचकॉक ने अपनी फिल्मों में कई प्रकार की एडिटिंग तकनीकी का प्रयोग किया जिनसे उनकी महान फ़िल्में बनी। हम यहाँ पर हिचकॉक की कुछ फिल्मों के एडिटिंग तकनीकी के बारे में चर्चा करेंगे जिसने उन्हे वो बनाया जो वो वर्तमान में हैं।

हिचकॉक ने ना केवल अपनी फ़िल्मों को सफलतापूर्वक एडिट किया बल्कि उनको इस तरीके से एडिट किया जैसा अन्य किसी ने नही किया। उनकी एडिटिंग तकनीक अद्वितीय थी और आज तक फिल्मों में उपयोग की जा रहीं हैं।

1959 में अल्फ्रेड हिचकॉक ने एक अमेरिकन सस्पेंस मूवी बनाई नॉर्थ बाइ नॉर्थवेस्ट, जिसमें कैरी ग्रांट और एवा मारी सैंट मुख्य सितारे थे। इसमें जो एक मुख्य फ़िल्म एडिटिंग तकनीकी जिसका उपयोग हिचकॉक ने किया वो थी- **पॉइंट ऑफ व्यू एडिटिंग** । पूरी फ़िल्म के दौरान चीजों को हम रोजर के नज़रिए से देखते हैं और वास्तव में हम उसके नज़रिए को समझते हैं साथ ही यह भी समझ में आता है कि वास्तव में वह कितना बहादुर और मजबूत चरित्र है।

इस फ़िल्म में उपयोग की गई अन्य फ़िल्म एडिटिंग तकनीकी थी – **शॉट/रिवर्स शॉट** । इस तकनीकी में हिचकॉक हमे उस बात-चीत के महत्व को समझाने मे सक्षम हो सके थे जो गोली मारते वक्त रोजर और ईव के मध्य होती है। इसमे वे दोनों बात-चीत के अंदाज में अपने पीछे और सामने की ओर बात करते हैं। इस एडिटिंग से हिचकॉक रोजर और ईव का एक दूसरे के प्रति प्रारंभिक आकर्षण की जानकारी दर्शकों को सीधा-सीधा बताए बगैर देना चाहते हैं। हिचकॉक ने हमेशा अपनी फिल्मों के दौरान ऐसा किया है, वो दर्शकों को सीधी- सीधी जानकारी देने के बजाय खुद ही कल्पना करने और सोचने देना चाहते थे।

प्रवीण सिंह

09763706428

और अंत में, एक अन्य तकनीकी जिसका उपयोग हिचकॉक ने इस फ़िल्म में किया वो थी- **आई लाइन मैच कट तकनीकी** । जब ईव ट्रेन की खिड़की के बाहर देख रही है और कैमरा एक पुलिस कार के ऊपर शिफ्ट हो जाता है तो हमे यह अनुभव होता है कि वास्तव में वह क्या देख रही थी। यहाँ पर यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार आई लाइन मैच कट एडिटिंग दृश्य के फ्लो में मदद करता है और वास्तव मे क्या घटित हो रहा है इसे अनुभव करने में मदद करती है।

ये थी हिचकॉक द्वारा नॉर्थ बाइ नॉर्थ वेस्ट में उपयोग की गई कुछ अलग-अलग फ़िल्म एडिटिंग तकनीकी जिसने इस फ़िल्म को मास्टरपीस बनाया।

1954 में अल्फ्रेड हिचकॉक ने एक अन्य सस्पेंस फ़िल्म रियर विंडो का निर्माण किया जिसमे मुख्य

सितारे थे- जेम्स स्तेवर्ट और ग्रेस केली। एक बार फिर हिचकॉक ने इस महान फ़िल्म को बनाने के लिए **पॉइंट ऑफ व्यू एडिटिंग** का प्रयोग किया। हम पूरी फ़िल्म में एल.बी. जेफेरिज के जूते नजरिए से साथ ही उसके नजरिए से सारी चीजों और घटनाओं को देखते हैं। इस तकनीकी द्वारा हम वास्तव में सस्पेंस के गवाह बनते हैं और अपनी कुर्सियों से उछलना चाहते हैं। हमें यह अच्छी तरह अनुभव होता हैं कि जो कुछ भी मूवी में घटित हो रहा है उसे एल.बी. जेफेरिज वास्तव में किस तरह समझता है।

इस फ़िल्म में किए गए अन्य एडिटिंग तकनीकी जिसका प्रयोग हिचकॉक ने किया वो था **-जंप कट और चित्रों की पुनरावृत्ति ।** यह वो तकनीकी थी जिसने दर्शको में सस्पेंस और रुचि पैदा की। एक महत्वपूर्ण फ़िल्म एडिटिंग तकनीक जिसका प्रयोग हिचकॉक ने तब किया है जब एल.बी. जेफेरिज को बालकनी से फेका जाता है। जब वह खिड़की से जमीन पर गिरता है तब हम देख सकते हैं कि हिचकॉक ने गिरने को वास्तविक दिखाने का प्रयास किया है जबकि हम आसानी से यह समझ सकते हैं कि यह सब नकली था और हरे पर्दे (क्रोमा) पर किया गया था। अल्फ्रेड हिचकॉक ने अपने फ़िल्म निर्देशन के इतिहास मे इस तरह की कई अद्भुत चीजें की है।

1960 मे एक बार फिर से हिचकॉक ने एंथोनी परकिंस और जैनेट लेघ को लेकर सस्पेंस/ हॉरर मूवी – सायकों का निर्माण किया। सायकों अल्फ्रेड हिचकॉक की सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म नहीं थी लेकिन सबसे ज्यादा लोकप्रिय फ़िल्म थी और है। कई महत्वपूर्ण फ़िल्म एडिटिंग तकनीक मे से एक थी – **मोंताज** जिसका प्रयोग हिचकॉक ने इस फ़िल्म में किया। सायकों का प्रसिद्ध शावर दृश्य, हिंसा को छिपाने के लिए मोंताज का उपयोग करता है। हम जैनेट लेघ पर वार करने वाले चाकू को नहीं देखते। हिंसा के प्रभाव को **क्विक एडिटिंग** के द्वारा दिखाया गया है और हत्या की घटना दर्शको के मस्तिष्क मे चलती है न कि पर्दे पर।

शावर दृश्य को अब तक का सबसे डरावना दृश्य बनाने के लिए एक अन्य तकनीक का उपयोग हिचकॉक ने किया वो था- वायलिन की चीख़ों के संगीत (बर्नार्ड हरमन का स्कोर) द्वारा दर्शकों को चौंकाना। इसी शावर दृश्य में एक अंतिम व महत्वपूर्ण एडिटिंग तकनीक का उपयोग किया **बहुत से क्लोज शॉट्स को कट द्वारा बहुत ही कम समयावधि के लिए एक साथ जोड़ना**। इसे सिंगल शाट में और वाइड एंगल मे दिखाने की अपेक्षा इस प्रकार दिखाने से स्वेक्वेंस काफी लंबा, ज्यादा व्यक्तिपरक, अत्यधिक अनियंत्रित और ज्यादा हिंसात्मक दिखाई पड़ता है। सायकों का शावर दृश्य यह सिद्ध करता है कि फ़िल्म एडिटिंग किसी भी फ़िल्म में कितनी महत्वपूर्ण होती है। हिचकॉक की शावर दृश्य की एडिटिंग तकनीक ही वह प्रमुख कारण है जिसके कारण वह दृश्य फ़िल्म इतिहास का बहुत ही प्रसिद्ध दृश्य बन सका।

अल्फ्रेड हिचकॉक फ़िल्म इतिहास के सबसे बड़े फ़िल्म निर्देशकों में से एक थे। विचार को फिल्मों के रूप में बदलना एक महान मस्तिष्क की ही उपज हो सकती है। फ़िल्म इतिहास में जिस ऊंचाई को उन्होने छुआ है उसका आकलन करना बहुत ही कठिन है। उनकी कुछ बहुत ही प्रसिद्ध फ़िल्मों की सहायता से हम यह समझ सकते हैं कि किसी भी फ़िल्म के लिए फ़िल्म एडिटिंग कितनी महत्वपूर्ण होती है। बिना फ़िल्म एडिटिंग के हिचकॉक की फिल्में उतनी लोकप्रिय और महान नहीं होती जितनी वो आज हैं। हिचकॉक ने ना केवल अपनी फिल्मों को सफलतापूर्वक एडिट किया बल्कि उनको इस तरीके से एडिट किया जैसा अन्य किसी ने नही किया। उनकी एडिटिंग तकनीक अद्वितीय थी और आज तक फिल्मों में उपयोग की जा रहीं हैं।

हिचकॉक एक बहुत ही महान एडिटर भी थे यही कारण है कि वो एक महान फ़िल्म निर्देशक थे। अल्फ्रेड हिचकॉक की फ़िल्म एडिटिंग का कौशल असाधारण था और वास्तव में उनकी फिल्मों में यह अलग ही दिखाई पड़ता है। अल्फ्रेड हिचकॉक में एक सामान्य फ़िल्म को महान फ़िल्म बनाने का कौशल था। हिचकॉक की फिल्मों की जो जगह वर्तमान में है उसकी एक महत्वपूर्ण कारण फ़िल्म एडिटिंग ही है और यही वजह है कि अल्फ्रेड हिचकॉक फ़िल्म इतिहास के एक महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं और हमेशा रहेंगे।

 ISSN 2455-0310

सिनेमा और रंगमंच का अंतरसंबंध

FILM & Translation STUDIES

अध्ययन

जिस प्रकार रंगमंच ने जीवन में प्रचलित समस्त कलाओं के तत्वों को स्वयं में समाहित किया है उसी प्रकार सिनेमा भी जीवन में प्रचलित समस्त कलाओं को अपनी प्रस्तुति में समाहित करता है।

सुरभि विप्लव
सहायक प्रोफेसर
प्रदर्शनकारी कला विभाग (फिल्म एवं नाटक)
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
महाराष्ट्र
संपर्क - 09404823570

सिनेमा और रंगमंच के अंतरसंबंध के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह दिखाई देता है कि शुरू से ही यह दोनों कलाएं एक दूसरे को प्रभावित करती रहीं हैं। कैमरे के आते ही वृत्तचित्र बनने शुरू हो गए, लेकिन जैसे ही फिक्सन सिनेमा का दौर शुरू हुआ रंगमच की उपस्थिती सिनेमा में दिखाई देने लगती है। जैसे–जैसे सिनेमा के व्याकरण और सौंदर्यशास्त्र का विकास होते जाता है, सिनेमा नाटकरूपी प्रस्तुतीकरण को छोड़कर सिनेमाई रूपी प्रस्तुतीकरण के विकास में शामिल होने लगता है। सिनेमा आपने प्रस्तुतीकरण में इतना प्रभावशाली होता गया कि वह आम जनता में नाटक के अपेक्षा अधिक महत्व रखने लगा सिनेमा की बढ़ती हुई लोकप्रियता और रंगमच का सिकुड़ता हुआ प्रभाव क्षेत्र को देखकर आज कुछ बुद्धजीवी यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या सिनेमा का पर्दा रंगमंच को ढँक लेगा ? सिनेमा और रंगमंच का अंतरसंबंध किस रूप में है इसपर दृष्टि डालना आवश्यक ही नहीं, प्रासंगिक भी है।

सिनेमा और रंगमंच का गहरा संबंध है, लेकिन अब रंगमंच के विकास और प्रस्तुतीकरण की बात करे तो हमें यह समझ में आता है कि उसमें किसी चरित्र की कहानी कही जाती है या किसी मुद्दे को चरित्र के माध्यम से व्यक्त किया जाता है जो की जीवन का ही हिस्सा है। जिस प्रकार रंगमंच ने जीवन में प्रचलित समस्त कलाओं के तत्वों को स्वयं में समाहित किया है उसी प्रकार सिनेमा भी जीवन में प्रचलित समस्त कलाओं को अपनी प्रस्तुति में समाहित करता है। पेंटिंग, स्थापत्य, नृत्य, साहित्य, संगीत आदि के तत्व रंगमच की प्रस्तुतिकरण में पाए जाते हैं, वही तत्व हमें सिनेमा के प्रस्तुतीकरण में भी दिखाई देते है, परंतु दोनों के प्रस्तुति का सौंदर्यशास्त्र अलग है। नाटक में जहां अभिनय की प्रधानता है या अभिनय को मुख्य आधार माना जाता है उसी तरह फ़िल्म विज्युवल (फ्रेम) में उपस्थित भाव के संप्रेषण को अधिक महत्व दिया जाता है। सिनेमानाई तकनीकी विकास ने इस विज्युल रूपी संप्रेषण के क्षेत्र में नए–नए आयाम प्रस्तुत कर रहा है, जैसे – **लाइफ ऑफ पाय, ग्लेडियेटर, 300** जैसी फ़िल्में विज्युवल संप्रेषण को नया आयाम देती है। सिनेमा अन्य कलाओं के तत्वों और सिनेमाई तकनीक का प्रयोग कर अन्य कलाओं के अपेक्षा ज्यादा प्रभावशाली स्थिति में दिखाई देता है। ये सिनेमा का प्रभाव ही है जो अन्य कलाओं के विकास में योगदान देनेवाले कलाकारों को फ़िल्म रूपी मंच उपलब्ध कराता है, जैसे- मंच सज्जा, वस्त्र विन्यास, स्थापत्य, चित्रकला आदि कलाओं के विकास को विस्तार देता है। जिस तरह सिनेमा ने रंगमंच के तत्वों को अपने में समाहित किया उसी तरह सिनेमा में होने वाले प्रयोगो से प्रभावित होकर रंगमंच ने सिनेमा के तत्वों को स्वयं में समाहित किया, जैसे- कहानी कहने का अंदाज़, प्रकाश प्रभाव ,मल्टीमीडिया ,वस्त्रसज्जा आदि। अन्य कलाओं की अपेक्षा रंगमंच का विशेष लाभ यह है कि सृजनात्मक प्रक्रिया में दर्शक भी उपस्थित रहते है और एक प्रकार से उसके सहभागी भी होते हैं। किसी नाटक के मंचन की सफलता और असफलता बहुत हद तक इस बात पर भी निर्भर है कि अभिनय अभिनेताओं द्वारा कहे गए वाक्यों और उनके द्वारा संप्रेषित विचारों के प्रति दर्शकों की प्रतिक्रिया कैसी है? रंगशाला में बैठा हुआ व्यक्ति अनुभव करता है कि उसके भी मत का सचमुच कोई महत्व है। किंतु चाहे जितनी भी महत्वपूर्ण फ़िल्म क्यों न हो उसके प्रदर्शन के समय दर्शकों को निष्क्रिय भूमिका ही निभानी पड़ती है। दर्शकों की किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया प्रदर्शित हो रही

फ़िल्म के कला सर्जन को प्रभावित नहीं कर सकती। सिनेमा और रंगमच के अंतरसंबंधों पर समय–समय बहुत कुछ लिखा गया खास तौर पर बीसवीं शताब्दी के तीस दशक में मूक सिनेमा ने जब बोलना सीखा, तो रंगमंच सिनेमा माध्यम के लिए एक खतरा बन गया था। 'अनेक फ़िल्मकारों ने समय–समय पर इस बात पर ज़ोर दिया है की सिनेमा को 'फोटोग्राफ किया गया थिएटर' नहीं बना देना चाहिए'।1 बाद में टोटल थिएटर की धारणा सामने आई और कहा गया कि सिनेमा सहित सभी कला माध्यमों को रंगमंच में ही क्यों न समेट लिया जाए। फ़िल्म और रंगमंच की आपसी निकटता कई और रूपों में भी रेखांकित की जा सकती है । उदाहरण के लिए- बहुत सी जानी–पहचानी फ़िल्मों के आलेख रंगमंच पर अपने मूल स्वरूप में प्रस्तुत किए जा चुके हैं । दूसरी तरफ नाटकों के आलेखों पर भी फ़िल्मकारों ने बेहतरीन फ़िल्मों का निर्माण किया है, जैसे– नूरजहां, इंद्रसभा, यहूदी की लड़की, शकुंतला, बिदेसिया, उत्सव, आषाढ़ का एक दिन, चरणदास चोर, आदि।

रंगमंच और सिनेमा के रिश्तों को महान जापानी फ़िल्मकार कुरोसावा ने सन 1957 में शेक्सपीयर के नाटक मैकबेथ को **द थ्रोन आफ ब्लड** नाम से बनाकर एक अभूतपूर्व विस्तार और अर्थ दे दिया था। सोंटाग ने इस बात की ओर बहुत सही इशारा किया है कि कुरोसावा एक ओर मैकबेथ का सिनेमाई रूप बनाते हुए पूरी तरह से फ़िल्म भाषा को अपनाते हैं, तो दूसरी ओर वह गोर्की के नाटक '**द लोवर डेफ़्थ**' को जब सिनेमा में बदलते हैं, तो नाटक की भाषा के नज़दीक होते हुए भी सिनेमा की विशिष्ट भाषा को छोड़ते नहीं हैं। *'कुरोसावा ने अपनी आत्मकथा में इस बात की ओर स्पष्ट इशारा किया है कि सिनेमा अनेक दूसरे माध्यमों (साहित्य,रंगमंच,संगीत,पेंटिंग,स्थापत्य से मिलता–जुलता है, लेकिन इसके बावजूद वह अद्वितीय है।2* इसी प्रकार भारत में भी कई मंचित नाटकों पर फ़िल्म बनी है। विशाल भारद्वाज ने शेक्सपियर के नाटकों को पूरी तरह भारतीय जामा पहना कर दो फ़िल्में बनाई। 'मैकबेथ' पर आधारित उनकी फ़िल्म 'मकबूल' समीक्षकों द्वारा सराही गई पर दर्शक उसे न अपना सके। हिम्मत न हारते हुए विशाल भारद्वाज ने 'ओथेलो' को आधार बनाकर 'ओंकारा' बनाई।

शायद टोटल थियेटर के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। दूसरे सभी माध्यमों से खुला रिश्ता स्वीकार करते हुए वहाँ भी रंगमंच की अपनी विशिष्ट उपस्थिती अनिवार्य है। सिनेमा अब पहले की तरह एक नया या शिशु माध्यम नहीं है। सौ से भी अधिक सालों में उसका अद्भुत विकास हो चुका है। अनेक महान फ़िल्मकार रंगमंच के भी महान निर्देशक माने जाते हैं। उदाहरण के लिए- **आरसन वैल्स** और **इंगमार बर्गमैन** दोनों माध्यमों की विशिष्ट प्रतिभान है। पर बहुत से पारखी यह मानते हैं कि वैल्स ने जब मैकबेथ और आथेलो के फ़िल्म रूप

बनाए, तो उन्हें **सिटिजेन केन** जैसी अद्भुत सफलता न मिली।3 फ्रांस के प्रसिद्ध सिद्धांतकार **आंद्रे बाजे** ने अथेलो का विश्लेषण करते हुए यह अच्छी बात कही थी कि *'दोनों विधाओं के रिश्तों की जब बात होती है, तो अभिनय पक्ष से अधिक 'डेकोर' का महत्व है। जब रंगमच को फ़िल्म में रूपांतरित करने की समस्या सामने आती है, तो अभिनेताओं का चुनाव उतनी बड़ी समस्या नहीं है, जितनी बड़ी समस्या 'डेकोर' की धारणा है। रंगमंच की भाषा 'बंद' स्पेस में सामने आती है। इन दोनों विधाओं में स्पेस की लगभग विरोधी धारणा है'।4*

यह बात भी गौर करने लायक है कि रंगमंच में अच्छी तरह से प्रशिक्षित अभिनेता आसनी से सिनेमा और टेलीविज़न माध्यम में अपनी पढ़ाई और प्रशिक्षण का इस्तेमाल कर लेते हैं। सत्तर के दशक में जब श्याम बेनेगल, गोविंद निहलनी, जैसे- फ़िल्मकारों ने एक अलग तरह का सिनेमा बनाना चाहा तो उन्होंने रंगमंच के प्रशिक्षित अभिनेताओं का खूब इस्तेमाल किया, जैसे- अमरीशपुरी, ओमपुरी, नसीर, शबाना, सुरेखा, सिकरी, उतराबावकर आदि अनगिनत रंग प्रतिभाओं के लिए अधिक दर्शकों तक पहुंचाने के रास्ते खुल गए। और जब हिंदी में कला सिनेमा पीछे हो गया या खत्म हो गया तो इनमें से अनेक प्रतिभाएँ कमर्शियल सिनेमा के स्टार बन गए या टेलीविज़न धारावाहिकों की शरण में चली गई। मणि कौल या कुमार शहानी जैसे प्रयोगधर्मी फ़िल्मकार रंगमंच से कोई किसी तरह का संबंध नहीं सामने आने देना चाहते थे, पर श्याम बेनेगल, गोविंद निहालानी आदि ने बिना नाम लिए टोटल थिएटर की तरह टोटल सिनेमा की कल्पना करना शुरू कर दिया।

अत: रंगमंच और सिनेमा दोनों की नींव का समान आधार है–अभिनेता के माध्यम से सर्जनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति। सिनेमा और रंगमंच की समानता का दूसरा बिंदु दार्शनिक, सौंदर्यशास्त्रीय और राजनीतिक समस्याओं को छूने के उनके ढंगों में है। तब भी दर्शकों के संपर्क को लेकर सिनेमा और रंगमंच अलग–अलग भी है। नाट्यकला के ये दो अलग–अलग रूप हैं। आज तीस के दशक की तरह सिनेमा को रंगमंच से नष्ट–भ्रष्ट होने का कोई खतरा नहीं है। आज जिस तरह से चित्रकार आसानी से फोटोग्राफी, फ़िल्म, डिजिटल तकनीक आदि का खुला व सार्थक इस्तेमाल कर रहा है वैसे ही रंगमंच और सिनेमा में दोनों माध्यमों के तत्वों का रचनात्मक इस्तेमाल करने के द्वार खुले हैं। आज के दौर में सिनेमा और रंगमंच दोनों हो अपना अलग-अलग अस्तित्व और महत्व बनाए हुए है और साथ ही एक दूसरे के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं । बदलते हुए परिवेश के आधार पर कलाओं में भी परिवर्तन होता रहता है। ये होने वाले परिवर्तन एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। अतः इन कलाओं का अंतरसंबंध यदि सकारात्मक है, साथ ही कला और समाज के विकास में योगदान देते हैं, तो इन बदलाव को स्वीकार करने से सिनेमा और रंगमंच को पीछे नहीं हटना चाहिए ।

संदर्भ

1. रंगप्रसंग ,अंक -2 2005, पृष्ठ 53
2. अकीरा कुरोसवा–सम लाइक एन ऑटोबायोग्राफी ,पृष्ठ -95
3. फ़िल्म हिस्ट्री –पृष्ट -150
4. आंद्रे बाजे –फ़िल्म क्रिटिसिजम

TAPAN SINHA

an uncompromising filmmaker, a celluloid iconoclast

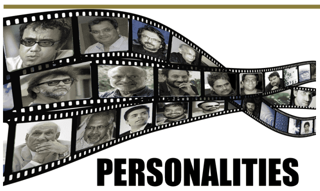

व्यक्तित्व

Tapan Sinha spans five generations of film making in Bangal. Though rooted in Kolkata, he was one of a handful of bi-lingual film makers who have triumphed in both Bengali and hindi Cinema.

TRANSFRAME TEAM

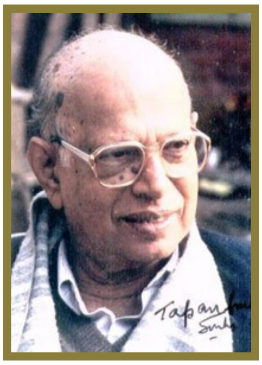

Sinha was born in Kolkata. He studied physics at the University of Patna and later earned an MSc at the University of Calcutta. Tapan Sinha was one of the most prominent Indian directors of his time forming a legendary quartet with Satyajit Ray, Ritwik Ghatak and Mrinal Sen. He was primarily a Bengali filmmaker who worked both in Hindi cinema and Bengali cinema, directing films like Kabuliwala (1957), Louha-Kapat, Sagina Mahato (1970), Apon Jon (1968), Kshudhita Pashan and childrens film Safed Haathi (1978) and Aaj Ka Robinhood. Sinha started his career in 1946, as a sound engineer with New Theatres film production house in Kolkata, then in 1950 left for England where he worked at Pinewood Studios for next two years, before returning home to start his six decade long career in Indian cinema, making films in Bengali, Hindi and Oriya languages, straddling genres from social realism, family drama, labour rights, to childrens fantasy films. He was arguably the most uncompromising filmmaker outside the orbit of Parallel Cinema. He married Indian actress Arundhati Devi. Their son is Indian scientist Professor, Anindya Sinha. On 15 January 2009, he died of pneumonia and septicaemia.

CONTRIBUTION TO INDIAN CINEMA

Tapan Sinha's contribution to celluloid adaptation of literature, mostly in Bengali is unparalled in the history of indian cinema. He has continued to turn out entertainment masterpieces since he made his debut as a film Director, archetypal Bengali Drama, mixed with literary flavor and human warmth, has been his m'tier. His films appear most alive when working their way into the mysteries of human life, be that of a young widow in the shadow of her past romance in "KSHANIKER ATITHE", or a prisoner in LOUHOKOPAT or a social dropout, a ruffian in APANJAN. Tapan Sinha spans five generations of film making in Bangal. Though rooted in Kolkata, he was one of a handful of bi -lingual film makers who have triumphed in both Bengali and hindi Cinema. In

the very recent series of films that Tapan has made in the last eight years, a trusting and idealistic man, assailed by unfortunate circumstances or hostile and scheming persons, stands out as an example of indomitable individualism. "I have always believed in individual courage and effort. I think, collective system or life hardly allows an individual to discover the infinite strength within him. I like the individual who has the courage to face any untoward situation, which is why I have shown an individual as a relentless fighter against all hazards in AADMI AUR AURAT, ATANKA and EK DOCTOR KI MAUT. My protagonists in these films have practically done miracles by their own strength and self-confidence. AADMI AUR AURAT (1984) won the National Award for its contriution to national integration. His works have won 19 National Film Awards in various categories. Tapan Sinha made a telefilm DIDI with Deepti Naval essaying the central character. Yet in each of these films, adapted faithfully from widely read literary works and neatly told, a serious observer may discover the creative burst that raises a popular work to an artistic level. This nonchalant mastery of spinning pleasurable surprises right on the screen has been discernible in all his films, even including his work containing raw realities of life like APANJAN, RAJA or ATANKA. His filmography presents an amazing variety of subjects. Even when the Director has profusely entertained the audience, he has done it every time with a new yarn promising new experiences for the filmgoers. And these have not been ordinary crowd-pleasers nor have they seemed mired in familiar formulas. A veritable commander of the box-office, Tapan Sinha has offered five super hit films in a succession - namely KSHUDITA PASAN, KABULIWALLAH, HATEY BAZARE, APANJAN and EKHANI - creating a record that is unsurpassed even today.He was awarded the Dadasaheb Phalke Award for the year 2008 for his outstanding contribution to Indian cinema on 21 July 2008.

Filmography

• Ankush (1954) • Upahaar (1955) • Tonsil (1956) • Kabuliwala (1957) • Lauha Kapat (1958) • Kala Mati (1958) • Khaniker Atithi (1959) • Khudhito Pashan (1960) • Jhinder Bandi (1961) • Hansuli Banker Upakatha (1962) • Nirjan Saikate (1963) • Jatugriha (1964) • Arohi (1964) • Atithi (1965) • Galpo Holeo Satti (1966) • Hatey Bazarey (1967) • Apanjan (1968) • Sagina Mahato (1970) • Ekhani (1971) • Zindagi Zindagi (1972) • Aandhar Periye (1973) • Sagina (1974, Hindi) • Raja (1975) • Harmonium (1976) • Ek Je Chhilo Desh (1977) • Safed Haathi (1978) • Sabuj Dwiper Raja (1979) • Banchharamer Bagan (1980) • Adalat o Ekti Meye (1982) • Admi Aur Aurat (1982) • Manush (1983) • Didi (1984) • Baidurya Rahasya (1985) • Atanka (1986) • Aaj Ka Robin Hood (1987) • Ek Doctor Ki Maut (1991) • Antardhaan (1992) • Wheel Chair (1994) • Daughters of This Century (1999) • Hutumer Naksha • Ajab Gayer Ajab Katha (1998) AND Anokha Moti (2000)

Ae Dil Hai Mushkil

समीक्षा

Directed by-
Karan Johar
Music-
Pritam
Cinematography-
Anil Mehta
Edited by-
Manik Dawar
Cast-
Aishwarya Rai Bachchan, Ranbir Kapoor, Aushka Sharma

Transframe Mumbai Team

Romance has always been the eternal essence of Bollywood films. There's hardly any film whose story has not been written with a pen that's dipped in the ink of love and romance. This week's release AE DIL HAI MUSHKIL also happens to be one such romantic film. Will AE DIL HAI MUSHKIL have a 'mushy' dream run or will it face 'mushkil' at the Box-Office, let's analyze.

AE DIL HAI MUSHKIL is a roller coaster ride between lovers, which mirrors the ups and downs of their lives. The film starts off with the introduction of the singer Ayaan Sehgal (Ranbir Kapoor) giving an interview, wherein he talks about the inspiration behind his successful singing career. The story, then enters a flashback that has Ayaan and the free spirited Alizeh Khan (Anushka Sharma) meeting at a night club. They start enjoying each other's company as friends, so much so that, that they become inseparable. One day, when Ayaan and Alizeh go on a double date with their respective lovers (Lisa Haydon and Imran Abbas), an untoward incident happens which leads to them breaking up with their lovers. And to 'celebrate' their break up, Ayaan and Alizeh head to Paris, where they find seamless comfort in each other's company. Despite Ayaan repeatedly confessing his love for Alizeh, she maintains that they are only best friends and nothing more than that. One day, when Ayaan and Alizeh go to party at a club, Alizeh finds her ex-lover Ali (Fawad Khan) playing at the DJ console. Alizeh, who now finds her love rekindled for Ali, announces her decision to Ayaan. She tells Ayaan that she wants to get married to Ali, who happened to be the only person whom she ever loved. A heartbroken Ayaan, then meets the stunning Sabah (Aishwarya Rai Bachchan), a poetess who is happily divorced. Despite the two having a great live-in relationship, Sabah finds something amiss in their relationship. Amidst all this, Ayaan gets to know something shocking about Alizeh that changes everyone's lives forever. What is it about Alizeh that leaves Ayaan shell-shocked, what happens to his relationship with Sabah and whom does Ayaan settle the rest of his life with, is what forms the rest of the story.

Karan Johar's films have always centred around relationships and emotions, which are woven together with larger than life opulence with music playing an integral role. AE DIL HAI MUSHKIL also falls in the same space. Ever since the time the promos of AE DIL HAI MUSHKIL were out, it had only upped the curiosity of the viewers about the film. The film, in totality, is worth the audiences' expectations. The film's taut screenplay (Karan Johar) makes its very realistic and extremely relatable to today's relationships. The film's dialogues (Niranjan Iyengar, Karan Johar) are really vibrant and its situational one liners will surely find resonance with the audiences (esp. the youth). Even though there is nothing new in the basic story premise of AE DIL HAI MUSHKIL as the audiences have seen this several times in the past, what sets the movie apart from others is its screenplay and utmost maturity with which Karan Johar has treated the film. AE DIL HAI MUSHKIL, which has all the required ingredients of a typical 'Karan Johar' film, oozes universal appeal in abundance. The film will surely be liked by all the age groups (majorly by youth), despite its mature storyline.

After having directed smash hit films like KUCH KUCH HOTA HAI, KABHI KHUSHI KABHIE GHAM, KABHI ALVIDA NAA KEHNA, MY NAME IS KHAN, and STUDENT OF THE YEAR, Karan Johar helms the directorial chair for AE DIL HAI MUSHKIL. The film, in totality, bears the trademarked 'Karan Johar's impeccable style of filmmaking.

Karan Johar, who is known for extracting exceptional performances from his starcast, does the same with AE DIL HAI MUSHKIL as well. With AE DIL HAI MUSHKIL, Karan Johar only proves and reaffirms the fact as to why he is considered one of the best storytellers in Bollywood. The one word that describes Karan Johar's direction in AE DIL HAI MUSHKIL is 'exemplary'. Full marks to Karan Johar for handling and presenting the emotional moments and the twist towards the climax, without resorting to any kind of melodrama or 'over-the-top' scenes. While the film's first half thoroughly establishes the characters and the proceedings, the second half sees a dip in the film's pace (more towards the climax). Do not miss the scenes where Ranbir and Anushka go on a double date, Ranbir Kapoor dancing to the tunes of 'Tohfa Tohfa' and 'Baby Doll', Anushka Sharma explaining to Ranbir Kapoor the meaning of 'dil ka dard', Ranbir Kapoor and Anushka Sharma living their 'Bollywood dream in the Alps' and the medley song sequences in the second half of the film.

As for the performances, the film totally belongs to Ranbir Kapoor, who is in a dire need of a hit film, especially after the back to back debacles like ROY, BOMBAY VELVET and TAMASHA. AE DIL HAI MUSHKIL sees Ranbir Kapoor excelling in the role that seems to be tailor made for him. Ranbir Kapoor, who happens to be the nucleus of the film, takes to his role like a fish to water. It just won't be wrong to say that AE DIL HAI MUSHKIL is an out and out a Ranbir Kapoor film. Anushka Sharma, on the other hand, is decent and does her role with extreme conviction. The chemistry between Ranbir Kapoor and Anushka Sharma is superlative in the film, so much so, that people will surely leave behind

the debacle of their last film BOMBAY VELVET. Overall, Anushka Sharma comes across as extremely pleasant in terms of her performance in the film. Aishwarya Rai Bachchan, despite having limited screen time, manages to looks beautiful, classy and very different from all her earlier roles. Full marks to Manish Malhotra for presenting Aishwarya Rai Bachchan like never before. Aishwarya manages to charm Ranbir's character and the audiences, exactly the way she is meant to be. Fawad Khan, whose role has been chopped mercilessly, looks good in whatever screen time he gets. The cameos by Alia Bhatt and Imran Abbas seem just passable. On the other hand, cameos by Shah Rukh Khan and Lisa Haydon are brilliant.

AE DIL HAI MUSHKIL's music (Pritam) is already a superhit, and the songs manage to give an extraordinary feel to the story. Tracks like 'Bulleya' and the title track lifts up the tempo of the film to another level altogether. The film's background score (Pritam) is equally good and helps the film immensely.

The film's cinematography (Anil Mehta) is superlative. The way in which he has shot the foreign locales are extremely top-notch. Even though the film's editing (Manik Dawar) is good, it definitely could have been tighter, majorly in the film's second half. Had the length of the film been a bit shorter, it would have definitely worked in the film's favour.

On the whole, AE DIL HAI MUSHKIL is a contemporary and a progressive take on relationships from the master story teller Karan Johar. It is a perfect Diwali entertainer which packages rich visuals, chartbuster music and an engrossing screenplay on a large canvas. At the Box-Office, the tremendous hype, combined with the festive period and an extended weekend will translate into amazing returns for the makers. In a nutshell, AE DIL HAI MUSHKIL has got 'S-U-P-E-R-H-I-T' written all over it.

 ISSN 2455-0310

शून्य है शिवाय

समीक्षा

निर्देशक- अजय देवगन
संगीत निर्देशक- मिथुन
कहानी - अजय देवगन
स्क्रिप्ट - संदीप श्रीवास्तव, रॉबिन भट्ट
प्रमुख कलाकार- अजय देवगन, एरिका कार और साएशा सहगल

हिमालय की 16000 फ़ीट की उंचाई पर एक आदमी बिना कपड़ों के लेटा हुआ है...उसके शरीर पर भगवान शंकर के टैटू बने हैं...अचानक हिमालय की वादियों में एक आवाज गूँजती है.....शिवाय....शिवाय... और फिर फ़िल्म का नायक शिवाय गुरुत्वाकर्षण के सारे नियमों को धराशाही करते हुए हजारों फिट की ऊंचाई से छलांग लगा देता है। शिवाय नीचे उतरने में उतना ही समय लेता है, जितना कि दर्शक को यह समझने में लगता है कि फ़िल्म शिवाय का कोई आध्यात्मिक और धार्मिक आधार नहीं है... हाँ पर एक बात बिलकुल साफ हो जाती है कि फ़िल्म में अजय देवगन ने निर्देशक होने का भरपूर फायदा उठाया है, क्योंकि सिर्फ अभिनेता के रूप में काम करने पर उन्हें गुरुत्वाकर्षण के नियमों तोड़ने की इतनी छूट तो कभी रोहित सेट्टी ने भी नहीं दी होगी, जबकि खुद उनका गुरुत्वाकर्षण से छत्तीस का आंकड़ा है। बहरहाल कहने का मतलब यह है कि फ़िल्म का पहला दृश्य देखने के बाद ही दर्शकों को इस बात का अंदाजा हो जाता है कि प्रोमो और ट्रेलर में अजय देवगन ने उन्हें जिस हिमालय, कैलाश और शिव के दर्शन कराए थे वे फ़िल्म में कहीं है ही नहीं। लेखक ने नायक को शिव के मेटाफर के रूप में इस्तेमाल किया है। जिस तरह भगवान शिव सती के अग्नि में समा जाने के बाद शिव विनाशक बने थे वैसे ही नायक भी अपनी बेटी के अपहरण के बाद विनाशक बन जाता है।

फ़िल्म की कहानी का नायक एक पर्वतारोही है। अब जब वह गुरुत्वाकर्षण के नियमों को नहीं मानता तो जाहीर है वह कुछ खास होगा। कहानी में शिवाय सुपर नेचुरल पवार न होकर भी बहुत खास है। वह आर्मी की मदद करता है... उसे हिमालय से बेहद प्यार है। इतना प्यार की वह अपने प्यार को इसके लिए कुर्बान कर देता है। दिल्ली से एक पर्वतारोहियों का एक समूह हिमालय घूमने आता है। इस ग्रुप में बुल्गारिया की एक लड़की ओल्गा (एरिका कार) भी है। शिवाय ओल्गा को एक तूफान से बचाता है। इसके बाद दोनों में प्यार हो जाता है। ओल्गा भारत में नहीं रुकना चाहती, क्योंकि उसके अपने सपने और ज़िम्मेदारियाँ हैं, वहीं दूसरी तरफ शिवाय हिमायल को छोडकर बुल्गारिया नहीं जाना चाहता। इसी कशमकश में कहानी आगे बढ़ती है और दोनों को पता चलता है कि ओल्गा प्रेग्नेंट है। ओल्गा एक बच्ची को जन्म देती है और उसे शिवाय के पास छोड़ कर बुल्गारिया चली जाती है। शिवाय की बेटी गोरा जब बड़ी होती है तो माँ से मिलने की जिद करती है। शिवाय उसे मिलाने के लिए बुल्गारिया ले जाता है पर यहाँ कहानी कुछ और ही मोड ले लेती है... गोरा किडनैप हो जाती है और फिर शुरू होता है शिवाय का तांडव। कई ट्विस्ट और टर्न्स से होने के बाद फ़िल्म अपने मंजिल तक पहुँचती है।

फ़िल्म की सबसे बड़ी समस्या इसकी लंबाई है। इंटरवल के बाद दर्शकों को कहानी का अंदाजा लग जाता है पर फ़िल्म खत्म होने का नाम नहीं लेती। करीब 2 घंटे 50 मिनट में ज़्यादातर समय शिवाय अपनी बेटी को खोजने में लगाता है। इस दौरान जम कर एक्शन होता है। निश्चित रूप से शिवाय के एक्शन दृश्य बॉलीवुड के मील का पत्थर साबित हो सकते हैं, पर सिर्फ एक्शन दर्शकों को बांध कर रखने में कामयाब नहीं हो पाया है। फ़िल्म की कहानी इतनी छोटी और सपाट है कि इंटरवल के पहले ही दर्शकों को पता चल जाता है कि आगे क्या होने वाला है और अंत तक पहुँचते-पहुँचते दर्शक कई बार घड़ी देख लेते हैं।

कहानी में ह्यूमर डालने के लिए निर्देशक ने बुल्गारिया में भारत के राजदूत (सौरभ शुक्ला) को बिहारी बनाया है। बिहारी टोन में बोल कर सौरभ दर्शकों को हंसाने की असफल कोशिश करते हैं।

रुद्रभानु प्रताप सिंह
मुंबई

पर यह कोशिश स्क्रिनप्ले और रिसर्च की कमी की तरफ इशारा करती है। सौरभ शुक्ला का किरदार गढ़ते समय लेखक को भारतीय विदेश सेवा में तैनात अधिकारियों की विशेषताओं और योग्यता के बारे में अध्ययन करना चाहिए था। कम्यूनिकेशन स्कील और डिप्लोमेसी ही एक आईएफएस अधिकारी की पहचान होती है। पर यहाँ लेखक और निर्देशक ने इस बात को समझने की कोशिश नहीं की है। फ़िल्म की सिनेमेटोग्राफी कमाल की है। बर्फ और पहाड़ पर्दे पर जादू की तरह दिखाई देते हैं। लेखक निर्देशक ने कई किरदारों और घटनाओं को बस ऐसे ही गढ़ दिया है। ये किरदार आते हैं और चले जाते हैं... इंडियन आर्मी के कुछ जवान, पहाड़ी लड़का, सौरभ शुक्ला और गिरीश कर्नाड जैसे किरदारों का और अधिक उपयोग किया जा सकता था।

अजय देवगन के हर फ़िल्म में संवाद पर विशेष ज़ोर रहता है। इस फ़िल्म में भी संवादों पर की गई मेहनत दिखती है। फ़िल्म के कई संवाद थिएटर से बाहर निकलने बाद भी दर्शकों के जेहन में मौजूद रहते हैं। फ़िल्म का संगीत बेहद शानदार है। फ़िल्म एक्शन के साथ ही इमोशन के ट्रैक पर भी दौड़ती है। पर कई बार यह इमोशन सिर्फ एकतरफा लगता है। दूसरे तरफ से किसी तरह की भावनात्मक प्रतिक्रिया नज़र नहीं आती है। अजय देवगन का अभिनय काबिल-ए- तारीफ है। उन्होंने शिवाय के किरदार को जिया है। निर्देशक ने डिटेलिंग पर भी काफी ध्यान दिया है। पर अफसोस है कि शिवाय एक अच्छी फ़िल्म बनते-बनते रह गई है। अगर फ़िल्म के स्क्रिप्ट और कहानी पर मेहनत होती तो शायद शिवाय कुछ और ही होता।

शिवाय को इस बार सिर्फ फ़िल्म के तौर पर ही नहीं, बल्कि एजेंडा सेटर के रूप में भी देखना होगा। रिलीज़ होने के पहले फ़िल्म के निर्माता इसके कंटेन्ट और पब्लिसिटी को लेकर जिस तरह का प्रोपोगेंडा किया था वह भी दर्शकों को आकर्षित करने में नाकाम रही। इससे एक बात तो पूरी तरह साफ हो गई कि फ़िल्म में हीरो सिर्फ और सिर्फ कहानी ही होती है। शिवाय का नायक शानदार एक्शन करता है...जबर्दस्त अभिनय करता है.... पर कमजोर कहानी इन सब चीजों को दरकिनार कर के शिवाय शून्य बना देती है।

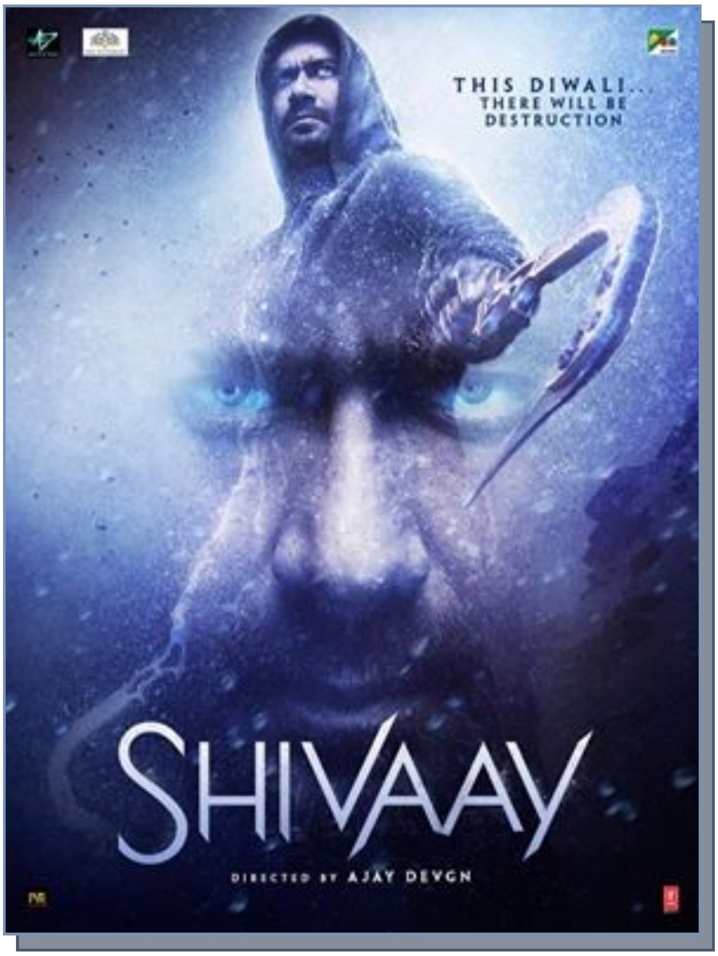

पार्च्ड: मर्द को इंसान बनने की सलाह

समीक्षा

निर्माता :
अजय देवगन,
लीना यादव

लेखन-निर्देशक :
लीना यादव

कलाकार :
तनिष्ठा चटर्जी,
राधिका आप्टे,
सुरवीन चावला,
सुमित व्यास,
अदिल हुसैन, लहर
खान

रुद्रभानु प्रताप सिंह
मुंबई

आज कल हिंदी सिनेमा स्त्री विमर्श के दौर गुजर रहा है। पिछले हफ्ते रिलीज़ हुई फ़िल्म पिंक और अब पार्च्ड, दोनों ही फ़िल्मों के केंद्र में नायिकाएँ हैं और निशाने पर है पुरुषवादी सोच। दोनों में फर्क सिर्फ पृष्ठभूमि का है। दिल्ली के रंग में रंगी पिंक इंडिया की कहानी कहती है, तो पार्च्ड का कैमरा हमें उस भारत का दर्शन करता है, जो कभी बदला ही नहीं। मोबाइल, टीवी, सिनेमा और इंटरनेट जैसे तमाम साधन यहां बदलाव की सुगबुगाहट तक पैदा नहीं कर सके। निर्देशक लीना यादव अपने फ़िल्म के माध्यम से स्त्री-पुरुष संबंधों और औरत के अस्तित्व को लेकर कई बड़े सवाल किए हैं।

फ़िल्म के एक शुरुआती दृश्य में गाँव की पंचायत एक लड़की को जबरन उसके ससुराल जाने का फैसला सुनाती है। लड़की विरोध करती है कि वह किसी भी कीमत पर ससुराल नहीं जाएगी, लेकिन उसकी बात कोई नहीं सुनता.... तब वह अपनी माँ को अपना दुख सुनाती है, 'अम्मा मेरा पति किसी लायक नहीं है। वह मुझे छूता तक नहीं। मेरा देवर मेरे साथ ज़बरदस्ती करता है, यहां तक की मेरा ससुर भी .....क्या-क्या होता है तेरी छोरी के साथ सुनेगी'.... पर उस लड़की की बात कोई नहीं सुनता। माँ बेटी का दर्द सुन कर भी चुप्पी साध लेती है और सम्मान के खातिर लोग उसे ससुराल भेज देते हैं। यह दृश्य आता है और तेजी से आँखों के सामने से गुजर जाता है। आगे की कहानी इससे प्रभावित नहीं होती पर कुछ सेकेंड में यह दृश्य पूरी फ़िल्म का निचोड़ दर्शकों के सामने रख देते है। बेटी के दर्द पर माँ की भयानक चुप्पी और पिता का रवैया कचोटता है.... मन में सवाल आते हैं कि ऐसा क्यों है ? क्यों सपने, आज़ादी और ख्वाहिश जैसे शब्द औरतों के हिस्से में नहीं आ पाते। लीना यादव अपने फ़िल्म के माध्यम से इन सवालों का जवाब ढूँढने की कोशिश करती हैं।

कहानी तीन औरतों से शुरू होती है। इसी समाज का अंग होने के बावजूद ये औरतें बाकियों से अलग हैं। ये सिर्फ अपने मन की सुनती हैं। रानी (तनिष्ठा चटर्जी), लाजो (राधिका आप्टे) और बिजली (सुरवीन चावला)। रानी विधवा है, लाजो को बच्चा नहीं हो रहा और बिजली एक नाचने वाली है। इन तीन किरदारों के सहारे लीना ने समाज, विवाह, मर्द-औरत और सेक्स जैसी समस्याओं को उठाया है। फ़िल्म हर मोड पर यह सवाल करती है कि जो चीज मर्द के लिए मर्दानगी साबित करने की निशानी है वही चीज औरत के शर्म का विषय क्यों है? रानी अपने 17 वर्षीय बेटे गुलाब की शादी जानकी से कराती है। पर जानकी गुलाब को पसंद नहीं आती। दोस्तों की संगत में वह भी उसी समाज और सोच का हिस्सा बन जाता है, जो उसकी माँ के उत्पीड़न के लिए ज़िम्मेदार हैं। फ़िल्म की सबसे बड़ी खासियत यह है कि फ़िल्म सिर्फ समस्याओं को उजागर भर नहीं करती, बल्कि समाधान की तरफ भी इशारा करती है। महिलाओं को खुद आगे बढ़ कर अपनी ज़िंदगी जीने और अपनी चाहत को अपनाने की सलाह देती है। फ़िल्म के क्लाइमेक्स में ये औरतें समस्याओं पर आंसू बहाने की बजाय खुद अपना रास्ता ढूंढ़ती हैं।

लीना ने किशन (सुमित व्यास) के बहाने पुरुषवादी सोच का नया नज़रिया भी दिखाया है। अंतरजातिय विवाह करने वाला किशन गाँव की महिलाओं के साथ लघु उद्योग चलाता है। विचारों से प्रगतिशील किशन समाज की सामंती सोच का विरोध करता है और गाँव के मर्दों के निशाना पर रहता है। यानि यह जरूरी नहीं है कि पुरुषवादी रवैया सिर्फ महिलाओं के लिए ही खतरनाक है। समानता की सोच रखने वाले पुरुषों के लिए भी यह विचारधारा दुश्मन सरीखा है। फ़िल्म के अंत में रानी अपने बेटे से कहती है 'मर्द बनने से पहले तू इंसान बनाना सीख'.... दरअसल यह वाक्य ही पूरे फ़िल्म का केंद्र बिंदु है, जिसे लीना ने बहुत सहज अंदाज़ में कहा है। स्क्रिप्ट की

बुनावट इतनी शानदार है कि बेहद गंभीर बात को भी यहां बहुत सहजता से कह दिया गया है। फ़िल्म के कई दृश्यों में न्यूड सीन हैं पर स्क्रिप्ट और सीनोमेटोग्राफी के कुशलता की वजह से कहीं भी अश्लीलता नज़र नहीं आती। निश्चित तौर पर इसके लिए हॉलीवुड फ़िल्म 'टाइटैनिक' के लिए अकैडमी अवॉर्ड जीतने वाले सिनेमैटोग्राफर रसेल कारपेंटर बधाई के पात्र हैं। अभियान के मामले में भी फ़िल्म बहुत प्रभावित करती है। तनिष्ठा चटर्जी, राधिका आप्टे और सुरवीन चावला के साथ जानकी के रूप में लहर खान का अभिनय भी बहुत दमदार है। वहीं छोटे से रोल में आदिल हुसैन और सुमित व्यास भी बहुत ही प्रभावी ढंग से पर्दे पर अपनी उपस्थिती दर्ज कराते हैं।

अन्ना: हकीकत से परहेज

समीक्षा

लेखक-निर्देशक: शशांक उदापुरकर

कलाकार : शशांक उदापुरकर, तनिशा मुख़र्जी, गोविंद नामदेव

रुद्रभानु प्रताप सिंह
मुंबई

2016 को हिंदी सिनेमा का बायोपिक ईयर कहना काफ़ी हद तक सही रहेगा। रेबेलियस फ्लावर, नीरजा, अज़हर, सरबजीत, बुधिया बोर्न टू रन, विरप्पन, एमएस धोनी : द अनटोल्ड स्टोरी' जैसी बायोपिक फ़िल्मों के बाद रिलीज हुई 'अन्ना' भी इसी कड़ी का एक हिस्सा है। फ़िल्म देखने से पहले मन में सबसे बड़ा सवाल था कि लेखक-निर्देशक ने अन्ना हजारे को किस तरह पर्दे पर उतारा होगा? एक आदमी जिसके बारे में मीडिया सालों से दिखा रही है...जिसके जीवन का हर पहलू अखबारों में छप चुका हो....उसी कहानी को नएपन के साथ फ़िल्म की शक्ल में पर्दे पर उतरना मुश्किल तो रहा ही होगा... पर फ़िल्म देखने के बाद यह भ्रम दूर हो गया। दरअसल फ़िल्म में लेखक-निर्देशक ने अन्ना के बारे में कुछ नया कहने की कोशिश ही नहीं की है।

फ़िल्म की शुरुआत दिल्ली के रामलीला मैदान से होती है। अन्ना किसन बाबूराव हजारे जन लोकपाल बिल के लिए धरने पर बैठे हैं। इसके बाद कहानी फ्लैशबैक में चली जाती है और फिर शुरू होता है किसन बाबूराव हजारे का अन्ना बनने का सफर। शुरुआत गांव से होती है। बचपन से ही किसन बाबूराव हजारे के मन में देश के लिए कुछ करने की चाह है। नौकरी की तलाश में किसन बाबूराव मुंबई आ जाते हैं और फूल बेचने लगते हैं, लेकिन देशभक्ति की राह उन्हें सेना में ले जाती है, मगर जैसी देशभक्ति वह करना चाहते हैं। वैसा कर पाने में असमर्थ होने पर वह सेना से वीआरएस लेकर वापस अपने गांव आ जाते हैं और सेना की नौकरी से मिले पैसों से गांव में एक मंदिर बनवाते हैं। इसके बाद सूखे के हालात से निबटने के लिए गांव में पानी लाने की जद्दोजहद में लग जाते हैं और फिर भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन छेड़ देते हैं। इस तरह से कई दिलचस्प मोड़ लेते हुए कहानी आगे बढ़ती है।

फ़िल्म का लेखन और निर्देशन शशांक उदापुरकर ने किया है। अन्ना हज़ारे का किरदार भी उन्होंने ही निभाया है। फ़िल्म में उदापुरकर की कोशिश की झलक साफ दिखाई देती है। अन्ना हज़ारे की डिटेलिंग देखकर लगता है कि उनहोंने काफ़ी करीब से अन्ना हजारे को जाना और समझा है। पर अन्ना के जीवन के हर पहलू को दिखाने के चक्कर में फ़िल्म कई जगह अपनी बात अधूरी छोड़कर ही आगे बढ़ जाती है।

जैसे एक जगह उन्हें फ़ौज छोड़ने के कारण भगोड़ा कहा गया है, लेकिन फ़िल्म इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं बताती है। अन्ना की देश सेवा के लिए व्याकुलता को भी बस वहीं छोड़कर फ़िल्म आगे बढ़ जाती है। इसके अलावा निर्देशक ने यह भी स्पष्ट करने की कोशिश नहीं कि है अन्ना का विरोध कर रहे गांव वाले अन्ना के समर्थन में कैसे आ जाते हैं? अन्ना आंदोलन करने के लिए क्यों प्रेरित होते हैं ? निर्देशक इन सवालों से बच कर आगे निकाल जाते हैं।

निर्देशक ने विवादों से बचाने के लिए टीम अन्ना के महत्वपूर्ण व्यक्ति अरविंद केजरीवाल को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर दिया है। इस वजह से फ़िल्म कई जगहों पर प्रभाव छोड़ने में असफल हो जाती है। कहानी और अन्ना से जुड़ी बातों के अलावा कई छोटी-छोटी चीजें बड़ी अटपटी-सी लगती हैं, जैसे- एबीपी माझा पर हिंदी में दिखाई जाने वाली खबर। जबकि एबीपी माझा मराठी चैनल है। फ़िल्म में युद्ध के दृश्य नकली लगते हैं। अभिनेता शशांक उदापुरकर की शक्ल काफ़ी कुछ अण्णा हजारे जैसी जरूर लगती है। उनके द्वारा बोले गए संवाद स्वाभाविक लगते हैं, लेकिन फ़िल्म के कई दूसरे संवाद उर्दू के शब्दों के कारण स्वाभाविक नहीं लगते।

अन्ना के रोल को निभाने के लिए अभिनेता शशांक उदापुरकर ने काफ़ी मेहनत की है। इसमें वे काफ़ी

हद तक सफल भी हुए हैं। शशांक के अलावा फ़िल्म में तनिषा मुखर्जी रिपोर्टर की भूमिका में हैं पर अभिनय के नाम पर करने के लिए उनके पास कुछ खास नहीं है। गोविंद नामदेव और शरत सक्सेना ने अपनी छोटी-छोटी भूमिकाओं में भी अच्छा अभिनय किया है। कहानी और अभिनय के बाद जो तीसरी चीज फ़िल्म में बुरी तरह से निराश करती है, वह है सिनेमेटोग्राफी। क्लोजअप शॉट्स में स्क्रीन पर हिलते हुए कैमरे आँखों को असहज लगते हैं। कुछ मिलकर ये अन्ना पूरे फ़िल्मी लगते हैं। निर्देशक के लाख कोशिशों के बावजूद फ़िल्म न तो अन्ना को दर्शकों के दिलों तक नहीं ले जा पाई है।

अनुवाद और निर्वचन का अंत:संबंध : संकेतवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

शोध

भाषा वैविध्य की स्थिति अनुवाद तथा निर्वचन की जननी है। अनुवाद और निर्वचन दोनों ही एक भाषा से दूसरी भाषा में कथ्य के अंतरण की प्रक्रिया होने के बावजूद भी दोनों में एक मौलिक अंतर है – अनुवाद का संबंध लेखनी से तथा निर्वचन का संबंध वाणी से है। कहने का तात्पर्य यह कि आशुअनुवाद, भाषांतरण, आशुव्याख्या आदि संज्ञाओं से नामित 'निर्वचन' अनुवाद की ही एक विशिष्ट मौखिक प्रक्रिया होते हुए भी इससे कुछ भिन्न प्रतीत होती है।

अनुवाद और निर्वचन के अंत:संबंध के संदर्भ में बात दोनों विधाओं में समानत्व के अन्वेषण की बात होगी। परंतु इनमें समानता की अपेक्षा अंतर पर अधिक ध्यान जाता है। अत: अनुवाद और निर्वचन के अत:संबंध पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार आवश्यक है, जिसके लिए दोनों को संकेतविज्ञान के एक भूमि पर उतारकर देखना होगा।

अनुवादक और निर्वचक दोनों ही एक भाषा से दूसरी भाषा में संदेश प्रेषित करने वाले माध्यम है। और इस दृष्टि से अनुवाद तथा निर्वचन अंत:संबंधित है।

संकेतविज्ञान, अनुवाद तथा निर्वचन की संकल्पना

अनुवाद तथा निर्वचन में संकेतविज्ञान की भूमिका की स्थापना हेतु इन तीनों ही संकल्पना पर दृष्टिक्षेप आवश्यक है।

अनुवाद क्या है ?

अनुवाद कर्म भाषा का सहायक है। संप्रेषण के महत्वपूर्ण साधन के रूप में भाषा प्रतिष्ठित है, परंतु दो भिन्न भाषा-भाषियों के बीच संप्रेषण में जब भाषा ही बाधा बन जाए, तब अनुवाद भाषा की समस्या को दूर कर संप्रेषण की नैरंतर्यता बनाए रखता है। विभिन्न विद्वानों ने अनुवाद को परिभाषित किया है, कैटफर्ड के लिए यह प्रतिस्थापन है, नाइडा व टैबर के लिए पुन:सृष्टी, बर्खुदारोव ने इसे रुपांतरण कहा तो फईदोरोव इसे अभिव्यक्ति कहते हैं। ए.एच. स्मिथ के शब्दों में कहे तो, *"अनुवाद करना यथासंभव अधिक से अधिक भाव की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना है।"*

वस्तुत: अनुवाद एक जटिलतम कर्म हैं, क्योंकि प्रत्येक भाषा अपनी प्रकृति, परिवेश, संरचना और अर्थ के साथ विकसित होती है। अत: किसी भी भाषा के आशयपरक, अभिव्यक्तिपरक और समाजपरक आयामों को दूसरी भाषा के संगत आयमों में प्रतिस्थापित करना कोई सरल कार्य नहीं।

मेघा आचार्य
पीएच.डी. अनुवाद प्रौद्योगिकी
acharyamegha20@gmail.com

निर्वचन क्या है ?

निर्वचन बहुभाषिक स्थिति के परिणामस्वरुप विकसित एक ऐसी तकनीकी है, जो दो भिन्न भाषिक व्यक्ति या व्यक्तिसमुहों के बीच वैचारिक आदान-प्रदान के मौखिक माध्यम के रूप में स्थापित हो गया है। निर्वचन से तात्पर्य एक भाषा के कथन को दूसरी भाषा में तत्काल मौखिक रूप में प्रस्तुत करना है।

निर्वचन की सरलतम परिभाषा बेकर ने दी है। उनके अनुसार "निर्वचन मौखिक वार्ता का मौखिक रुप में अनुवाद है।" निर्वचन की प्रक्रिया वस्तुत: एक भाषा से दूसरी भाषा में शाब्दिक अर्थ के स्थानांतरण की अपेक्षा तात्पर्यों का अंतरण है। निर्वचन उस क्रिया की ओर संकेत करता है, जिसमें

एक भाषारूप के समतुल्य दूसरे भाषारूप के माध्यम से संप्रेषण को सुकर बनाया जाता है। निर्वचक का कार्य स्रोत भाषा के वक्ता द्वारा लक्ष्य भाषा के श्रोताओं के लिए निर्दिष्ट संदेश के प्रत्येक आर्थिय तत्व (शैली और प्रयुक्ति) तथा प्रत्येक तात्पर्य और भाव को प्रेषित करना है।

इसके मुख्य रूप से दो प्रकार है:

तत्काल निर्वचन- वक्ता के कथनों का उसी समय अनुवाद करते जाना तत्काल निर्वचन कहलाता है।

क्रमिक निर्वचन- दो व्यक्तियों के परस्पर वार्तालाप का अनुवाद बारी-बारी प्रस्तुत करना क्रमिक निर्वचन कहलता है।

संकेतविज्ञान क्या है?

संकेतविज्ञान संप्रेषण का सार्वभौम और सार्वकालिक ज्ञानानुशासन है। एक ज्ञानानुशासन के रूप में संकेतविज्ञान संकेतों का विश्लेषण या संकेत व्यवस्था के कार्यचालन का अध्ययन है।

ईको संकेतविज्ञान को निम्नानुसार परिभाषित करते हैं-

"संकेतविज्ञान उस सब से संबद्ध है जिसे संकेत के रूप में देखा जा सकता है।"

(Semiotics is concerned with everything that can be taken as a sign.)

संकेतविज्ञान से तात्पर्य संकेतों और कोड के सामान्य विज्ञान से है। 'संकेत' ही संकेविज्ञान की आधारभूत इकाई है और संकेतविज्ञान संकेत, संकेत व्यवस्था, संकेत प्रक्रिया तथा संकेत प्रकार्य का व्यवस्थित अध्ययन है।

अनुवाद और निर्वचन : संकेतविज्ञानिक संदृष्टि

वस्तुत: अनुवाद तथा निर्वचन की प्रक्रिया संकेतों के प्रतिस्थापन की प्रक्रिया है। संकेत वह है जो किसी वस्तु के स्थान पर प्रयुक्त हो कर किसी विशिष्ट अर्थ का निर्धारण करें। संकेत दो प्रकार के हैं– भाषिक और भाषेतर। सस्यूर भाषिक प्रतीक की संकल्पना को दो अभिन्न तत्वों में प्रस्तुत करते हैं- संकेतक-संकेतित(signifier–signified)। उनके शब्दों में,

"The sign is the whole that results from the association of the signifier with the signified."

अर्थात 'संकेत' संकेतक और संकेतित की समन्वित इकाई है, जिनमें से एक की अनुपस्थिती में दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। सस्यूर के अनुसार भाषिक संकेत अपनी प्रकृति में मूलत: यादृच्छिक एवं रूढ़िपरक होते हैं और वे उनके भौतिक उपादान या लक्षण से नहीं, बल्कि मूल्यों द्वारा सार्थकता पाते हैं जो भाषा की अपनी व्यवस्था उसे प्रदान करती है। मूल्य ही भाषिक प्रतीकों के प्रकार्यों स्पष्ट करता है। अनुवाद करते समय अनुवादक या निर्वचक को भाषिक प्रतीकों के स्थानपर दूसरी भाषा के भाषिक प्रतीक मात्र रखने नहीं है, बल्कि उनके मूल्यों के प्रकार्य को पहचान कर समांतर प्रकार्यपरक मूल्यों में प्रतिस्थापित करना होता है। कहने का तात्पर्य यह कि अनुवाद तथा निर्वचन भाषा आधारित नहीं, बल्कि संकेत आधारित है जो स्रोत भाषा तथा लक्ष्य भाषा के भाषिक और भाषेतर संकेतों अंतरण व्यापार से संबंधित है।

प्रत्येक लिखित या मौखिक पाठ मूलत: संकेतों से बना होता है । अनुवादक तथा निर्वचक को उस कथित के पिछे के संकेतित को पकडकर लक्षपाठ के समतुल्य संकेतों में प्रस्तुत करना होता है। इसके लिए अनुवादक तथा निर्वचक को दोनों भाषा के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, भौगोलिक, धार्मिक आदि संदर्भों से परिचित होना आवश्यक है, क्योंकि भाषा केवल नाम पद्धति नहीं है(सस्यूर)। हर भाषा भौतिक और अनुभव संसार को अपने-अपने ढंग से व्यवस्थित करती है। अत: यही कारण है कि एक भाषा के संकेत दूसरी भाषा में उसी तरह प्राप्त नहीं होते। उसे समतुल्यता के आधार पर ही प्रतिस्थापित करना होता है।

सी. एस. पर्स संकेत को परिभाषित करते हुए कहते हैं,

"A sign or representamen is something which stands to somebody for something in some respect or capacity."

पर्स संकेत की संकल्पना को निम्न त्रिकोणीय संबंध में प्रस्तुत करते हैं:

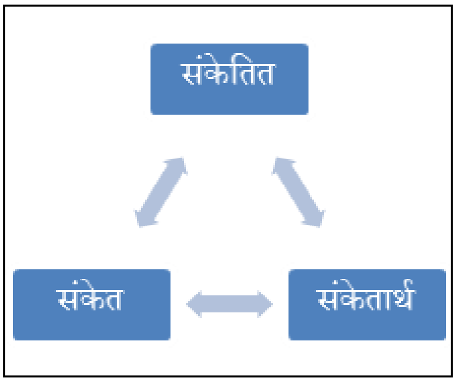

संकेत : संकेतार्थ को अभिव्यक्ति देने वाली इकाई,
संकेतित : जिसे संकेत संदर्भित करता है, और
संकेतार्थ : वह कल्पना है जो संकेत को किसी विशेष अर्थ से जोड़ती है।

संकेत-संकेतित वस्तु-संकेतार्थ का यह त्रिकोणीय संबंध परस्पराधारित ऐसी प्रक्रिया है जो किसी विशेष अर्थ का निष्पादन करते हैं, जिसे संकेतन प्रक्रिया कहा गया है। इस प्रक्रिया में संकेतार्थ स्वत: एक संकेत में परिवर्तित हो जाता है और यह क्रम असमाप्य रूप से चलता रहता है। सी. एस. पर्स के लिए संकेतन की प्रक्रिया संकेत के अनुवाद की प्रक्रिया है। उनके अनुसार संकेत तब तक संकेत नहीं कहलाता जब तक वह अन्य संकेत में परिवर्तित नहीं हो जाता। अर्थात अर्थ ग्रहण की प्रक्रिया वास्तव में संकेत के अन्य संकेत व्यवस्था में अनुवाद की प्रक्रिया है।

"But a sign is not a sign unless it translate into another sign in which it is more fully developed."

Dinda l. Gorlee पर्स के अनुवाद संबंधी धारणा पर चर्चा करते हुए कहते हैं,

"For Peirce translation is the same as sign interpretation, and sign interpretation is translation."

इस दृष्टि से रोमन याकोब्सन ने अपने आलेख ***On Linguistic Aspect of Translation*** में 'भाषिक संकेत के अनुवाद या अर्थांतरण' के तीन प्रकारों का निरुपण किया है। अर्थात वे 'संकेत व्यवस्था' के परिप्रेक्ष्य में किसी भाषिक पाठ के अनुवाद या अर्थांतरण को तीन संदर्भों में देखते हैं, जिसमें – एक भाषा से उसी भाषा के अन्य संकेतों में, एक भाषा से अन्य भाषा के संकेतों में, एक भाषिक व्यवस्था से भाषेतर संकेत व्यवस्था में अनुवाद किया जाता है। याकोब्सन द्वारा निरुपित तीनों प्रकार निम्नानुसार है:

अत:भाषिक अनुवाद (Rewording) एक ही भाषा के भाषिक संकेतों का उसी भाषा के अन्य संकेतों में पुन:कथन है।

अंतरभाषिक अनुवाद या अनुवाद(Translation Proper) भाषिक संकेतों का किसी अन्य भाषा के संकेतों में अर्थांतरण है।
अंतरप्रतीकात्मक अनुवाद या रुपांतरण(Transmutation) भाषिक संकेतों का भाषेतर संकेत व्यवस्था में रुपांतरण है।

याकोब्सोन के अनुसार संकेत का अर्थनिर्धारण वास्तव में उस संकेत का दूसरे संकेत में अनुवाद है, जिसमें वह एक अधिक विकसित संकेत होता है।

Susan Petrilli अपने आलेख ***Translation, Semiotics and Ideology*** में अनुवादी विचार प्रक्रिया की धारणा प्रस्तुत करती है और इसे संकेत प्रक्रिया बताती है,

"…. Translative thinking is a semiotic process in which something stand for something else, in which different sign systems are related, in which one sign is fully developed, enriched, criticized, put a

distance, placed between inverted commas, parodied or simply imitated, and in any case, interpreted in terms of another sign."

अत: स्पष्ट है कि मनुष्य के अर्थग्रहण तथा अर्थाभिव्यक्ति संकेतों के अनुवाद की ही प्रक्रिया है। रोमन याकोब्सन के मत में संकेतविज्ञान संप्रेषण का विज्ञान है। संप्रेषण में वक्ता या लेखक संदेश को कोडीकृत करता है, यह संदेश लिखित या मौखिक माध्यम से प्रेषित करता है और श्रोता या पाठक इसके विकोडीकरण द्वारा अर्थ ग्रहण करता है। संप्रेषण की इस प्रक्रिया को अनुवाद तथा निर्वचन की प्रक्रिया पर लागू करें तो हम देखते है कि अनुवादक और निर्वचक जब एक भाषा के संदेश को दूसरी भाषा में ले जाता है तब वास्तव में वह भी इसी प्रक्रिया से गुजरता है, जिसमें *स्रोत पाठ के कोडीकृत संदेश को विकोडीकृत कर उसका अंतरण लक्ष पाठ के कोडीकृत संदेश में करता है। अनुवादक तथा निर्वचक विकोडीकरण के इस चरण में निश्चित संदर्भों में कोडीकृत संदेश में निहित संकेतों को समझकर अर्थ ग्रहण करता है और उसका अंतरण लक्ष्य पाठ के समतुल्य संकेतों में कोडीकृत करता है।*

निर्वचन की प्रक्रिया में भाषिक तथा भाषेतर संकेत सम्मिलित रहते हैं। निर्वचन के दौरान निर्वचक को वक्ता की भाषा का विषयानुरूप लहजा, आंगिक चेष्टाओं तथा हावभाव आदि भाषेतर संकेतों को भी समझना होता है। अनुवाद के पास जहां सोच-विचार कर अनुवाद करने के लिए समय होता है, वहीं निर्वचक को तत्काल ही अनुवाद मौखिक रूप में प्रस्तुत करना होता है। अनुवादक तथा निर्वचक दोनों के उद्देश्य, कार्यक्षेत्र, साधन भिन्न है। दोनों विधाओं अनुप्रयुक्त और अनिवार्य कौशल भिन्न-भिन्न है फिर भी दोनों का लक्ष्य एक ही है- किसी भाषा के कथ्य को निष्ठापूर्वक और यथासंभव पूर्ण रूप से अन्य भाषा में अभिव्यक्त करना।

निष्कर्षत: कह सकते है कि अनुवाद तथा निर्वचन संकेतों से बने संदेश के अंतरण का क्रिया व्यापार ही है। *अत: अनुवादक और निर्वचक एक भाषा से दूसरी भाषा संदेश के अंतरण में मूलत: एक ही प्रक्रिया का अनुसरण करता है।* अनुवादक और निर्वचक दोनों ही एक भाषा से दूसरी भाषा में संदेश प्रेषित करने वाले माध्यम है। और इस दृष्टि से अनुवाद तथा निर्वचन अंत:संबंधित है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. कृष्ण कुमार गोस्वामी, अनुवाद विज्ञान की भूमिका, राजकमल प्रकाशन (2012) दिल्ली।
2. आशु अनुवाद , डॉ. गरिमा श्रीवास्तव, संजय प्रकशन(2003), दिल्ली।
3. अनुवाद सिद्धांत की रुपरेखा, डॉ. सुरेश कुमार,वाणी प्रकाशन(2005), दिल्ली।
4. भाषा विज्ञान सैद्धांतिक चिंतन, रवींद्रनाथ श्रीवास्तव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
5. **Semiotics** - Volume 1, edited by Mark Gottdiener, Karin Boklund Lagopoulou & Alexandros Ph.Logopoulos, Sage Publications, New Delhi .
6. **Semiotics & the Problem of Translation**: with the special to the semiotics of Charles S. Peirse, Dinda l. Gorl e
7. **Signs: An Introduction to Semiotics** , Thomas sebeok, university of Toronto press,2001
8. **On Linguistic Aspect of Translation,** Roman Jakobson
9. **Translation, Semiotics and Ideology,** Susan Petrilli
10. http://www.id.erudit.org/037115ar

लेखनी

सृजन

बड़ी मेहनत से किए आशियाने खड़े
आज खुले आसमां में जिंदगी सलामत है

जो छूट गया शायद वो थोडा बेहतर था
जिंदगी सबसे बेहतर है ये मलामत है

जो अब बीच नहीं उनका ग़म न कर दुआ करो
हमारे लिए जान उनकी शहादत है

बंद कर संदूक में रख दो ऐसे ख़्वाबों को
अंजाम जिनका आने वाला कल कयामत है

यकीं ही नहीं दिल, उम्मीद, सज़दे भी टूटें है
बंद कर दे अब इंसा जो ये ज़लालत है

बड़ी मेहनत से किये आशियाने खड़े
आज खुले आसमां में जिंदगी सलामत है

मेरी आदतें अब भी वही, जो कुछ भी था सब शौक़ था
ना जीत हार से राबता, लड़ता रहा हूँ मैं

ना मंजिले मिली भले, पर रास्ते छोड़े नहीं
एक लम्हा भी थमा नहीं, बढ़ता रहा हूँ मैं

नश्तर बना बैठा रहा फरेबियों की महफिल में
उठती हर नजर भी पढ़ता रहा हूँ मैं

एक भूख काबिल होने की काबिज़ दिलों जान पर
ज़मी से आसमां तलक, उड़ता रहा हूँ मैं

ख़्वाब, ख़्वाहिश, आरजू , उम्मीद सब टूटे मगर
हर एक पड़ती चोट पर, जुड़ता रहा हूँ मैं

राहुल कुमार सतुना
हरिद्वार, उत्तराखंड

तुलिका

CREATION

सृजन

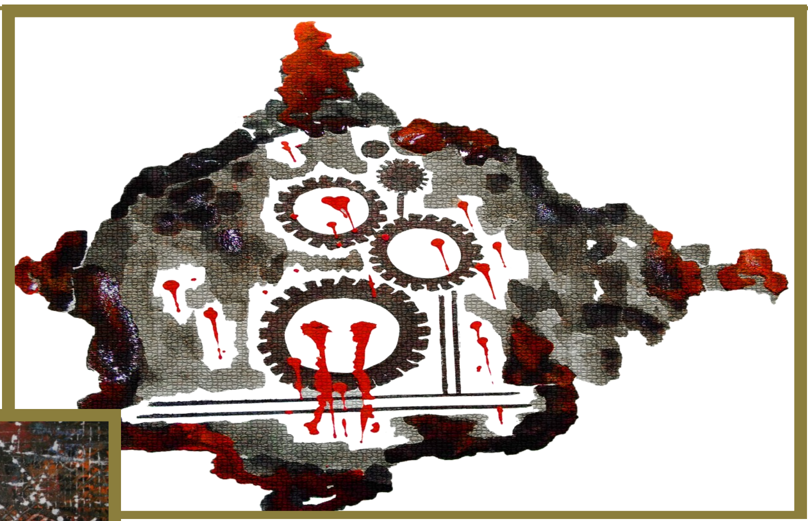

MEGHA ACHARYA

\

कैमरा

CREATION

सृजन

PRAVEEN SINGH

An interview with Mr. Sasasiri Suwannathip

Professor for Hindi, Pali and Sanskrit at Nakhon Ratchasima Rajabhat University, THAILAND

अभ्यास

> Hindi, for me is special language of communication with Indian people. It is a medium to know the culture and people of India. One can know the deeper senses of the thoughts and speech of native people only through his language.

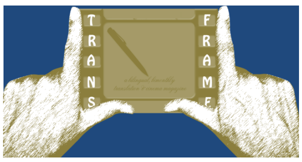

Miss Latika Chawada

1. Sir, your introduction please! (Please brief yourself)

A.S. Myself Sasasiri Suwannathip, I got B.A. in Pali and Sanskrit Language from Mahamakut Buddhist University, Bangkok THAILAND and M.A. in Sanskit from Silpakorn University, Bangkok THAILAND. I am serving as a lecturer in Thai department at Nakhon Ratchasima Rajbhat University, Province Nakhon Ratchasima of Thailand. I have been teaching Pali, Sanskrit in Thai language and Hindi at the same above for the last six years. I also had been to China for teaching Thai language to Chinese students at Yuxi University, Yunan Province, China.

2. How many languages do you translate in?

A.S. From Thai to Hindi and vice versa

3. How did you develop your interest in Indian studies?

A.S. I like Indian culture and Indian people because we find so many similarities in the culture of Thailand and India and also language. You can find a long list of words that sound same in Thai and have same meaning as in Hindi. The respect and courtesy in Indian people attracted me more because Thai people practice Buddhism which has its roots from India, Lord Buddha was born and brought up in India which is another reason why I love India and visit India.

We, Thai people worship Lord *Ganesha* in Schools and Universities as we consider and respect and bow him as a lord of education. Lord *Ganesha* is worshipped first by the students of Dramatics and *Nritya* Departments in the entire Thailand. We also worship *Durga Devi, Kali Devi, Lord Shiva, Ishwar* and etc.

4. Where are you doing your Ph.D.? What is your topic?

A.S. I am right now pursuing Ph.D. in Hindi Literature from The Department of Literature, MGAHV, Wardha (Maharashtra). And my topic of Ph.D. is "Comparative study of *Ramcharitmanas* and *Ramakien* (Thai version of *Ramayana*).

5. What is your opinion regarding Hindi as a language?

A.S. Hindi, for me is special language of communication with Indian people. It is a medium to know the culture and people of India. One can know the deeper senses of the thoughts and speech of native people only through his language. So Hindi is closer to my heart to learn about Indian people. Hindi and Thai languages I think are more closer because we find loan words of Hindi in Thai language. If I put some examples, *Putra* in Hindi is *But*, *Acharya* in Hindi is *Aachan*, *Ishwar* is *Iswan* whereas Guru in Hindi is *Khru* in Thai having same meanings.

I am willing to write a book in future on Hindi Grammar for Thai students which will be a book of reference and also longing hard to translate Hindi literature into Thai and vice versa.

6. What difficulties do you face while teaching Hindi to your Thai students? What efforts do you take while teaching them in Hindi?

A.S. While teaching Thai students in Thailand I do not come across various difficulties though Thai language and Hindi both are different in various aspects. Thai language doesn't have Gender and Tenses alike in Hindi and sentence structure/formation is similar as in English say 'Subject+Verb+Object'. Alarge number of Thai words come from Pali, Sanskrit and Hindi and as I know all these languages, it becomes easy for me to teach them these languages.

7. What do you feel is the status of Hindi/Bharat in all other languages you translate in?

A.S. Hindi as a language of translation is I think is very beautiful and easy when you learn its pidgin. For any person having knowledge of Thai who translates in Hindi, is easier for him, because we share many things in common, are very near because of our culture. A very good example is the festival of *Songkraant*, new year of Thailand celebrated just as the way *Holi* is celebrated in India.

8. Is 'Indology' the subject pursued at University level in Thailand?

A.S. I have knowledge in Indology, because I studied in Pali and Sanskrit. And in that subject we must know in Vedas, Indian Culture, Indian Language, And I can understand in Vedic scriptures.

Yes, Indology is pursued at University level. We are blessed with Indian Literature and those are being translated in Thai. Biggest examples are : *Shakuntala, Ramayana, Savitri, Bhagvad Geeta, Ramayan, Purana, Mahabharata Yuddha,* Vedic literature etc. and many of these scriptures don't have Thai version, but later on I did the translation of the same for my reference.

However, *Ramayana*, the epic most popular and respected in India is also popular in Thailand but the characters of *Rama* and *Hanumana* are not that much revered. They are just considered being the character roles of a long myth. For example, In *Ramcharitmanas* Lord *Hanumana* is *Brahmachari* while in Thai *Ramakien*, *Hanumana* has so many wives. Earlier in Thailand, The plays of *Ramayana* were being played in Courts of kings for their enchantment, later on which came to be shown publicly and gradually they became popular amongst Thai folks.

Thanks!

Interviewer :
Miss Latika Chawda
Ph.D. Research Scholar
Department of Translation Studies
MGAHV, Wardha
Maharashtra, INDIA BHARAT
Email: latikac1986@gmail.com
Tel: +91 7620613859
+91 8624854728

Interviewee:
Mr. Sasasiri Suwannathip
Professor for Hindi, Pali and Sanskrit
Nakhon Ratchasima Rajabhat University, THAILAND
Email: suwannathip.mgahv@gmail.com

मूंगों का हार

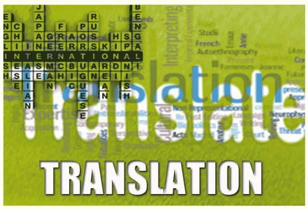

अनूदित

इस बार अनूदित स्तंभ में प्रस्तुत है [मूल - तेलुगु कहानी पगडालु **लेखिका -** आचन्ट शारदा देवी] **का हिंदी अनुवाद**

डॉ. एम. लक्ष्मीकांत

दिन ढल रहा था। दूर कहीं दो पर्वतों के बीच सूरज अपनी तीक्ष्णता को खोकर रक्त बिंब की तरह लग रहा था। छटते हुए छोटे-छोटे बादलों की छाया उस लाल गोल बिंब के कारण ऐसे लग रही थी मानो फूल, पत्ते, छोटे-छोटे पर्वत लाल दर्पण में प्रतिबिंबित हो रहें हों और नारंगी रंग की इमारतों में प्रकृति नृत्य कर रही हो।

वासंती बाल धोकर उसी समय छत पर आई। सूर्यास्त की शोभा को निहारती हुई बाल पोंछते-पोंछते वह मुंडेर पर बैठ गई। हवा के झोंके से जब भी बाल लहराते, लोबान की खुशबू चारों ओर फ़ैल जाती। वासंती के गोरे से गले में बहुत पुराना लाल-लाल मूंगों [नवरत्नों में से एक रत्न] का हार इधर-उधर डोल रहा था। मलाई की तरह सफ़ेद उसके गाल उस लालीमा में शरमातें हुए से लग रहें थे। लाल साड़ी पहने, गले में लाल मूंगों का हार पहने, माथे पर कुमकुम लगाए, चमेली की कली जैसे नाखूनों पर चढ़ा हुआ मेहँदी का रंग आदि संध्या ज्योति में ऐसे लीन हो गए, जैसे उससे होड़ लगा रहें हों।

वासंती का मन उस दिन जितना खुश था, उससे पहले उतना कभी भी नहीं हुआ था। कितना सुहाना दिन... कितनी लुभावनी संध्या... वासंती का मन एकदम प्रसन्नता से प्रफुल्लित हुआ। अगले ही पल वह किन्हीं दूसरे विचारों में खो गई। पूरे आठ वर्ष बाद वह अपने गाँव लौटी थी। उसका बचपन वहीं बीता था। इसी गाँव में, इसी घर में कदम-कदम पर कई यादें। बचपन में सही हुई सारी वेदना, आशा, निराशा, सुख, संतोष, बेचैनी, आँसू आदि उसके मन में एक छायाचित्र की तरह सरक रहें थे। खेतों में चुने हुए मौलसिरी के फूल, बरगद के पेड़ के नीचे झूला झूलना , चांदनी रातों में सीढियों के पास रेत में बैठकर खेले हुए खेल सब कुछ जैसे एक कहानी की तरह याद आ रहा था। हर एक घटना याद आ रही थी।

सुबह- सवेरे रेलगाड़ी से उतरकर बैलगाड़ी में बैठी। घर की ओर जाते समय बैलों के गले में बंधे घुंघरुओं की आवाज़ से नींद का नशा-सा चढ़ गया। रात के समय केसरी की शादी में जब हम दो बैलों की गाड़ी में जा रहे थे, तब का झूमना, बिंदियों वाले डिज़ाइन के लहंगे का हवा के झोंके से इधर -उधर उड़ना, पंकज की हँसी, भूख और नींद के मारे मेरा जंभाई लेना; सब कुछ एक सपने की तरह दिख रहा था। फाटक के पास गाड़ी उतर कर अंदर जाते समय मालतीलता की बेल को देखकर वहाँ लाल गुलाब के लिए अनसूया के साथ लड़ना याद आया। इसी तरह से और भी बहुत कुछ................।

इन आठ वर्षों में जीवन में बहुत सा बदलाव आया। एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए मेरा जीवन पूर्ण

रूप से विकसित हुआ। कलकत्ता में चार वर्ष अच्छी तरह से पढ़ कर बी.ए पास किया। यूनिवर्सिटी में फर्स्ट आई थी। यह जानकर पापा ने खुश होकर बहुत बड़ी टी पार्टी दी। उसके बाद डिस्ट्रिक्ट स्वास्थ्य अधिकारी के बेटे से विवाह हुआ। उन्होंने दहेज़ में कुछ भी नहीं माँगा। फिर भी पापा ने बहुत सारा पैसा खर्च करके बड़ी ही धूमधाम और शान से शादी की। सौभाग्य से शादी के तुरंत बाद ही उन्हें लखनऊ में अच्छी नौकरी मिल गई। मैं ससुराल चली गई।

2

उसके बाद एक साल में ही बेटी जन्मी। उन्हें पदोन्नति के कारण बहुत ही बड़ी नौकरी मिल गई। आर्थिक रूप से या फिर किसी अन्य रूप से कोई भी कमी नहीं थी। कोई दुख भी न था, पति बहुत प्यार करते। मेरी बात कभी भी नहीं टोकते। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ, बहुत सुखी हूँ, सब लोग यही सोचते।

फिर भी, कभी भी बचपन की बातें याद आतीं तो मन विचलित हों जाता...। बेटी के जन्म पर, या फिर उसके बाद कई बार, इस गाँव में आने की कोशिश की। पर छह महीने में एक बार उनका तबादला होने से, घर की ज़िम्मेदारी के कारण कभी भी इस ओर आना न बन पड़ा। इतने सालों के बाद अब आना हों पाया।

दिन ढल गया। आकाश नक्षत्रों से भर गया। चांदनी सोने की तरह चमकती हुई चारों ओर व्याप्त हुई। चाँद उत्साह से मुस्कुरा रहा था। वासंती नीचे गई, कंघी लाकर अपने बाल सुलझाए और चोटी बनाई। तभी खिले हुए चमेली के फूल और सुबह तोड़े हुए गुलाब के फूलों से माला गूंथकर बालों में लगाई।

बच्ची को गोद में लेकर माँ छत पर आई और पूछने लगी, “खाना खाने आ रही हों क्या?”

“जल्दी क्या है ? पापा को भी आने दो।” मैंने कहा।

माँ ने आकाश की ओर देखते हुए फिर से पूछा, “वे कब आ रहें हैं ?”

“पता नहीं। शायद त्यौहार पर आएँ.... छुट्टी मिले तो।”

माँ और मैं चुपचाप आम की मंजरियों की ओर देखते हुए थोड़ी देर वहीं बैठे रहें। उसके बाद बच्ची को खाना खिलाया और छत पर बिस्तर बिछाकर सुलाया। मैं भी कुछ सोचती हुई बच्ची के पास लेट गई। चाँदनी की शीतलता चेहरे पर गिर रही थी। चाँद आँखों के सामने सोने की गेंद की तरह मुस्कुरा रहा था।

खुशी में, दुख में और हँसी-मजाक में कितनी ही चाँदनी रातें, कितने ही दिन इस छत पर बिताए। बचपन में जब कभी कुछ न सूझता था इस छत पर आकर बैठ जाती थी। मेरे घर के चारों ओर दूर कहीं कई छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, टीले आदि हुआ करते। घर के सामने बहुत बड़ा सा हरा-भरा आँगन था, उसके बाद कहीं-कहीं ऊँचे-ऊँचे नारियल के पेड़, उनके पीछे दो छोटी पहाडियाँ ऐसी लगती जैसे इधर-उधर से आकर बीच में जुड रही हों। शाम के छह बजते ही उन पहाड़ियों के बीच में से लाल रंग का सूरज झाँकने लगता। साँझ होते ही नारियल के पेड़ों के बीच से चाँद बातें करता। हर रोज यह सब देखकर मैं पुलकित हों जाती।

बेटी ने नींद में करवट ली। गले में जो मूंगों का हार था, वह बेटी के सिर से लगकर छाती पर गिरा, मन कुछ भारी सा लगा।

उफ़:.... कितने अरसे से ढो रही हूँ यह मूंगों का हार....! जब भी वह हार गले में इधर-उधर खिसकता तब न जाने कैसा दुःख होता और व्यथा भी होती।

हमारे घर के सामने उस हरे-भरे मैदान में केवल लक्ष्मण बाबा की झोंपड़ी थी। उस झोंपड़ी में बिन माँ की बच्ची सीता अपने

दादा-दादी के साथ रहती थी। झोंपड़ी के सामने एक छोटी सी दुकान के सहारे वे अपना जीवन व्यतीत करते थे।

3

सुबह गाड़ी उतरते ही मैंने इस आशा से उस ओर देखा कि शायद उनकी दुकान आदि कुछ दिखेगा। पर दूर-दूर तक कोई नामों -निशान नहीं था। उस मैदान में आकाश को छूती हुई सी कई रंग-बिरंगी इमारतें उठी थी। मैं होश में आई।

बेचारे लक्ष्मण बाबा बहुत अच्छे इंसान थे......। वे मुझे बहुत चाहते थे, "बिटिया रानी, बिटिया रानी" कहते हुए सिर पर चढ़ा लेते थे। वे मेरा बहुत ख्याल रखते थे। झोंपड़ी के सामने की उस हरी घास पर मैं सीता के साथ दिन भर खेला करती थी। उस समय मैं सात-आठ वर्ष की थी। सीता भी मेरे हम उम्र की थी। मैं सुबह उठकर नहा धोकर, बाल बनवाकर, रेशमी फ्राक पहने सज-धज कर खेलने जाती थी। फटा लहंगा पहने, बिखरे बालों से सीता झोपड़ी से बाहर आती थी। दोनों मिलकर उस हरी घास पर बैठकर गिट्टू, लुका-छुपी, आँख-मिचौनी, गुड्डा-गुड़ियों की शादी आदि तरह-तरह के खेल खेलते थे। कभी-कभी मैं खाना खाने के लिए घर जाना भी भूल जाती थी तब माँ चौखट तक आकर आवाज लगाती और मुझे खींच ले जाती। मिटटी में खेल-खेल कर, बाल बिखर जाते और फ्राक फट जाती थी। मैं ऐसे ही घर पहुँचती। माँ हर रोज डांटती और कहती, 'उन भीकमंगे बच्चों के साथ मत खेल।' कभी-कभी तो डाट-डपटकर घर ले जाती। पर अगले ही पल मैं मौका पाते ही सीता के पास पहुँच जाती थी। माँ झल्लाकर चुप हों जाती।

दुकान पर जब कोई भी ग्राहक न होता तब लक्ष्मण बाबा उनके पास आकर बैठते, कहानी सुनाते, इधर-उधर की बातें करते। सीता के साथ-साथ मैं भी उन्हें बाबा कहकर बुलाती थी।

वे मुझे सीता से भी ज्यादा लाड-प्यार करते थे। घर में इधर-उधर मिले हुए टिन व कांसे के छोटे-छोटे टुकड़े सोना-चांदी कहकर मैं बाबा को देती थी। वे बेकार के टुकड़े लेकर बाबा सोने-चांदी की तरह एक डिब्बे में संभालकर रखते। उनके बदले में वे मुझे और सीता को पिप्परमिंट और चाकलेट आदि दिया करते थे। हर रोज यह एक खेल-सा हो गया था। घर से मैं कुछ-न-कुछ उठा ले जाती, बाबा को देती और वे उसे कितनी ही सावधानी से संभालकर रखते। चाकलेट खाते हुए मैं इतनी खुश होती जैसे कोई बहुत बड़ा काम कर दिया हो। एक बार तो माँ से भी कह डाला, तब माँ ने पूछा "क्या चांदी की डिबिया में रखी हुई सोने की गुरिया भी दे रही हों?"

मैं घबरा गई, मेरे चेहरे का रंग उड़ गया और कहने लगी, "नहीं ! वह नहीं ! मुझे जो मिले वही।"

माँ को विश्वास नहीं हुआ। झल्लाते हुए कहने लगी, "कितनी बार समझाया, उस ओर मत जा, पर तू मानती ही नहीं न?"

.....एक बार, एक दिन मूंगे बेचने वाला एक व्यक्ति आया। माँ ने लगभग एक घंटे तक सौदा करके उससे तीन तरह के मूंगे लिए। लाल रंग के छोटे-छोटे, मध्यम और उससे थोड़े से बड़े। वे मूंगे बहुत ही सुंदर थे। माँ ने डिबिया में से सोने की गुरिया निकाली और शंकरय्या से मूंगे के तीन हार बनवाए। वे हार जिस दिन आए , उसी दिन मैंने उस में से सबसे बड़े मूंगों का हार लिया और पहना। माँ ने जब यह देखा तो कहने लगी,

"छि:... इतने बड़े मूंगों का हार तुझे नहीं जचेगा। देख! तेरे लिए मैंने छोटे मूंगों का हार बनवाया है। वह पहन ले।"

मैं नहीं मानी। मैंने हठ किया, "मुझे यही हार अच्छा लगा, मैं यही हार पहनूँगी।"

माँ ने कितना समझाया पर कोई फायदा न हुआ। वह भूतिया हार पहने ही खेलने चली गई। वह भारी हार पहनने से गर्दन दुखने लगी। मैं जब भी फुदकती, वह लंबा-सा हार मेरे साथ उछलता। नया गहना पहनने के कारण मैं इतनी खुश थी कि अगले ही पल मैं

खेल में मग्न हो गई और नए हार को भूल ही गई। उस दिन शाम के समय जब मैं घर पहुँची तो माँ ने गरम पानी से नहलाया। चांदी की थाली में खाना परोसते हुए माँ ने घबराकर पूछा, “अरी ! मूंगों का हार कहाँ है ?”

मैं चौंकी, घबराहट से मैंने अपना गला टटोला। वहाँ हार नहीं था। खेल के हडबडाहट में मैंने उस ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया। कब गिरा, कहाँ गिरा कुछ भी याद नहीं।

माँ नाराज हुई और गुस्से से कहने लगी, “कितनी बार समझाया तुझे फिर भी तू नहीं मानी। वह हार गुमाकर आ गई।”

उसके बाद पापा और माँ ने मुझसे कई तरह के प्रश्न किए। अगले दिन भी प्रश्नों की बौछार न रूकी। कई लोगों ने मुझसे वही प्रश्न किए। मैं चिढ़ गई और रो पड़ी।

“सुबह से कहाँ-कहाँ गई? किसके साथ खेली? कहाँ खेली? आखिरी बार हार कहाँ देखा?” इसी तरह के कई प्रश्न पूछे गए। जैसा मुझे सूझा, मैंने हर एक प्रश्न का उत्तर दे दिया।

“आँगन में खेली, ऊपर के कमरे में सावित्री के साथ खेली। बीच-बीच में हार की ओर भी ध्यान देती थी।” इसी तरह से कुछ-कुछ कहती रही, पर मैंने यह बात नहीं बताई कि बहुत देर तक दुकान के पास सीता के साथ खेली। न जाने माँ क्या कहेगी ? शायद सीता और बाबा को डांटे ? यह सोचकर, मैं घबरा गई।

उस रात बारह बजे तक माँ और पापा पूरे घर में हार को ढूँढ़ते रहे। कहीं भी हार दिखाई नहीं दिया। मैं घबरा गई और रोती हुई दुखी मन से सो गई। सुबह होते ही घर के सभी लोगों ने घर का कोना-कोना छान मारा। अड़ोस-पड़ोस में सबको पता चल गया कि हार गुम गया है। वे दिलासा देने आ गए , वे सांत्वना देते और सलाह देकर चले जाते। इसकी कोई सीमा ही न थी।

“हर एक जगह बहुत अच्छी तरह से ढूँढ़ लिया ?”

“पच्चीस रुपए का था।”

“किसी ने उठा लिया होगा, किसी पर कोई शक है क्या ?”

इसी तरह के कई प्रश्न और व्याख्यान होते। बेचारी माँ बड़े ही संयम से उन सबका जवाब देती थी। वैसे भी माँ को ऐसे सवालों का जवाब बार-बार देने में बड़ा मजा आ रहा था और अच्छा भी लग रहा था। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे हार मिल गया हो।

आठ बजते ही पास वाली गली से चाचाजी आए। उन्होंने आते ही अपनी ओर से प्रश्नों की बौछार शुरू कर दी। वे माँ से पूछने लगे, “हार कब पहनाया , फिर कब देखा ?” माँ ने जवाब दिया। अचानक चाचाजी को कुछ याद आया और पूछने लगे ,

“यह हर रोज उस बाबा की दुकान पर खेलने के लिए जाती है न ? कल नहीं गई क्या ?”

माँ को अचरज हुआ। इतनी स्पष्ट बात उसे क्यों नहीं सूझी ? अपनी मंदबुध्दि को कोसते हुए कहीं कोने में छिपी मुझे बुलाकर पूछने लगी, “क्यों री ? कल सीता के साथ खेलने नहीं गई?”

“सुबह-सुबह गई थी” मैंने घबराते हुए कहा। चाचाजी ने बात सुनी और तुरंत एक नतीजे पर पहुँचे और कहने लगे,

“फिर क्या ? उस झोपडी के पास खेलते समय ही गिर गया होगा। उस बूढ़े ने उठाया होगा।”

माँ ने उनका समर्थन किया और कहा, “हाँ-हाँ उसी ने उठाया होगा। वह हर रोज इससे सोना-चांदी कुछ-न-कुछ मँगवाकर अपने पास रख लेता था।”

मैं चकित हुई। “झूठ, बाबा ने कभी भी मुझसे वे टुकड़े लाने के लिए नहीं कहा। मैं ही इधर-उधर मिली हुई बेकार की चीज ले

जाती थी। मुझे खुश रखने के लिए ही बाबा वे चीजें अपने पास रखते थे।" मैंने ऐसा चीख-चीख कहना चाहा पर हड़बड़ी की वजह से मैं अपना मुँह नहीं खोल पाई।

चाचा जल्दी से गए और बाबा को बुलाकर ले आए। आँगन में पंचायत शुरू हुई। चाचाजी के मन में जो कुछ भी आया, बाबा पर जोर-जोर से चिल्लाए। उन्हें फटकारा, दुःख पहुँचाया और कहने लगे, "सुबह से यह तुम्हारी झोपड़ी के पास खेल रही थी। तुमने नहीं तो फिर किसने उठाया होगा?"

बाबा वहाँ ऐसे मुँह लटकाकर खड़े रहे जैसे उन्होंने कुछ सुना ही न हो, जैसे उन्हें कुछ समझ में ही न आया हो। लोग क्या कह रहे हैं, इस ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। बस, अपमान सहते हुए दुखी मन से उदास खड़े रहे। बाबा ने दो तीन बार दीनता से कहा ," मैं नहीं जानता जी! बिटिया के गले का हार तो मैंने देखा भी नहीं।"

"बिटिया को मैं सीता से भी ज्यादा लाड़ प्यार करता हूँ। उसका गहना मैं छूऊंगा क्या?"

बाबा ने फिर एक बार दर्दभरी आवाज में कहा। किसी ने उनकी बात न सुनी।

" देखो ! उठाया हुआ हार दे दो, क्यों बिना बात पर बदनाम होते हो ?" माँ ने कहा।

"मैंने नहीं उठाया, मेरे पास है ही नहीं।" बाबा स्पष्टता से बडबडाए और माँ की बात सुनकर अचंभित हो खड़े रहे।

चाचाजी ने कहा, " अपने-आप दे दो वरना पुलिस में रपट लिखवानी होगी। पुलिस के पास पहुँचते ही क्या होगा पता है न।"

पुलिस का नाम सुनते ही बाबा घबरा गया और डर के मारे कांपने लगे। मुँह से एक शब्द भी न निकला।

उस समय पुलिस नरसय्या वहाँ से गुजर रहा था। वह अंदर आया और लाठी घुमाते हुए चाचाजी से पूछने लगा ,

"क्या है जी ? कुछ हुआ है क्या ?"

" कुछ भी नहीं हुआ।" कहते हुए ही चाचाजी ने शुरू से लेकर पूरी कहानी सुना दी।

"क्यों रे ? जल्दी से बता .... नहीं तो स्टेशन चलना होगा।" पुलिस नरसय्या ने बाबा को धमकाया और बड़ी ही शान से लाठी को जमीन पर मारकर आँखें ततेरते हुए देखा।

बाबा दुःख के मारे पागलों की तरह खड़े रहे। उनके आँखों की निराशा मुझे घेर कर जला रही थी। सीता बाबा के पैरों से लिपट कर चीख-चीख कर रो रही थी। मुझे भी रोना आया और मैं भी रो पड़ी। बाबा एक पल के लिए दिशाहीन से हुए और नींद में चलते हुए से दुकान की ओर गए। बाबा ने अपने प्राणों से ज्यादा प्यारा वह टिन का डिब्बा निकाला और उसमें से तह किया हुआ काफी पुराना दस का नोट निकाल कर चाचाजी को देते हुए कहा ,

" बेटा! मैंने हार तो देखा ही नहीं फिर भी यह नोट लेकर मुझे छोड़ दो। गरीब हूँ, बूढ़ा हूँ, आँखें भी ठीक से दिखाई नहीं देती। मुझे सताकर आपको क्या मिलेगा ?"

बाबा की आँखों में आँसू आ गए।

सब लोगों ने मिलकर सोचा कि जब हार ही नहीं मिला तो पैसे लेना ही ठीक रहेगा। पर माँ कहने लगी ,

"पच्चीस रूपये का हार है, केवल दस रूपये से क्या होगा ? दस रूपये और दो। तुम जान-पहचान के हो इसलिए छोड़ रहे हैं।

"हाँ –हाँ ! दे दो।" चाचाजी ने भी कहा।

बाबा ने उदास होकर फिर से डिब्बे में हाथ डालकर टटोला, एक-एक रूपये के तीन सिक्के निकाले और चाचाजी को दिए।

"मेरी जायदाद यही है, मुझे मारकर लेना चाहें तो भी मैं इससे ज्यादा कुछ भी नहीं दे सकता।" बाबा ने कांपते स्वर में कहा। खाली डिब्बा हाथ से छूटा और 'धन' की आवाज करते हुए नीचे गिरा। चाचाजी ने और भी कुछ कहना चाहा। पर माँ के डर से तब तक चुपचाप बैठे पापा इतने में ही बोल उठे,
" जाने दो ! बूढ़े को और क्यों सताते हो ?"

इससे चाचाजी चुप हो गए और माँ ने भी चुप्पी साधी। सीता का हाथ पकड़े बाबा चले गए। जैसे कि अब तक बहुत महान कार्य किया हो, पुलिस नरसय्या ने अपने सिर पर हाथ फेरते हुए हाथ फैलाकर कहा, "सर ! आपकी दया !" दो रूपये लेकर ही उसने पीछा छोड़ा। धीरे-धीरे सब अपने-अपने घर चले गए।

मैं आँगन में बैठी रही, आँखों से आँसू बहने लगे। वह अच्छी तरह से जानती थी कि बाबा ने हार नहीं चुराया और नहीं कभी चुराएंगे। यह बात वह किसीसे नहीं कह पाई। बिना बात पर बाबा को डाटा गया और वह चुपचाप देखती रही। मैंने दौड़कर जाकर कहना चाहा, "बाबा! मुझे पता है तुमने हार नहीं लिया, बुरा मत मानना। मैं दरवाजे तक पहुंची ही थी कि इतने में माँ आई और हाथ पकड़ कर अंदर खींच ले गई।

उसके बाद माँ ने मुझे कभी भी बाबा की दुकान तक नहीं जाने दिया। एक दिन ऊपर के कमरे में जब पोलम्मा झाड़ू लगा रही थी तब अलमारी के नीचे से हार उछल कर नीचे गिरा। मैंने एक छलांग लगाई।

पोलम्मा चीख पड़ी , "माँ जी ! मूंगो का हार यहाँ है।"

माँ जल्दी से ऊपर के कमरे में आई। लाल मूंगों का हार देखकर विस्मित हुई। "पूरा घर छान मारा, पर इस अलमारी के नीचे देखने की नहीं सूझी।" खुशी से और लज्जा से हार हाथ में लेकर माँ ने कहा।

"यह सब उस बूढ़े के कर्मों का फल है, कोई क्या कर सकता है ?" पोलम्मा ने झिडकते हुए समाधान दिया और झाड़ू घुमाती हुई चली गई।

मैं बड़ी ही खुशी से माँ के पास गई और पूछा, "बाबा से कह दूँ कि हार मिल गया।"

माँ ने झटके से हार अपने आँचल में छुपाया और डाटकर कहने लगी , " छि! अपनी वस्तु को घर में ही रखा और बाबा को बिना कारण अपमानित किया और दुःख दिया। लोग क्या कहेंगे ? कितनी बेइज्जती होगी ?"

मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया। बिना किसी कारण चोरी का इल्जाम लगाकर बाबा को दुःख पहुँचाया तो क्या उनका कोई अपमान नहीं हुआ, बेइज्जती नहीं हुई ? खोई हुई वस्तु मिल गई यह कहकर अपनी गलती मान लेने से हमारा अपमान और बेइज्जती होगी क्या ?"

मैंने सोचा कि हार मिलते ही उनके पैसे उन्हें दिलवा देगी। पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। न जाने माँ ने पोलम्मा से क्या कहा, हार मिलने की बात किसीको भी पता न चली। यह बात मेरे मन में कभी न मिटने वाली व्यथा बनकर रह गई। मेरे अपनों ने बाबा के साथ जो अन्याय किया , उनके पसीने की कमाई के रूपये जबरदस्ती लिए। यह बात हमेशा के लिए मेरे मन में एक बोझ सा बनकर रह गई। बाबा कई दिनों तक ठीक नहीं हो पाए। अपमान के कारण वे दिन-प्रतिदिन कमजोर होते चले गए। उनका व्यापार पूरी तरह से गिर गया। धीरे-धीरे उनकी दुकान बंद हो गई। सीता सयानी हुई और काम पर जाने लगी। उसीसे उन तीनों का पेट भरता।

जब मैं छत पर जाती, झोपडी के पास खड़े होकर बाबा और सीता दीनता से, दया से और प्यार से मेरी ओर देखा करते। मैं

लज्जा के मारे आँसू पोंछकर अंदर चली जाती। जब मैं इस गाँव से जा रही थी तब गाड़ी में जाते समय बाबा झोपड़ी के बाहर आए और बड़ी देर तक मेरी ओर देखते रहे.... कितने ही आत्मीय भाव से, भरी आँखों से, दुखी मन से। न जाने उन आँसुओं ने क्या आशीर्वाद दिया कि उनकें भोले प्रेम ने छाया की तरह मुझे घेर लिया और मेरी रक्षा की।

कितने ही दिन बीते, कितने ही बदलाव आए पर मैं बाबा को नहीं भूल पाई। मेरे गले का हार जब भी इधर-उधर डोलता, बाबा की याद आ ही जाती। मैंने कई बार सोचा कि बाबा का ऋण चूका दूँ। पर माँ के डर से और संकोच के कारण कुछ भी नहीं कर पाई।

ठंडी हवा बहने के कारण बरगद के पेड़ की डालियाँ झूमने लगीं। माँ ने नीचे से आवाज दी , "खाना खाने आ रही है या नहीं ? पापा आ गए।" मैं धीरे से उठी, बेटी को चादर ओढ़ी और नीचे गई। मैंने खाना खाते हुए माँ से पूछा, "माँ ! हमारे घर के सामने रहते थे न .... बाबा, सीता ....उनका क्या हुआ ?"

माँ ने मुँह बनाया और कहा ," कोई चार साल पहले जब अकाल आया था, तब दोनों बूढ़े मर गए। कोई रिश्तेदार आया और सीता को लेकर चला गया। कहाँ गए पता नहीं।"

ओह ! उफ ! मेरे दिल को घायल करने वाली बातों की ओर से माँ कितनी अनासक्त है। मुझे खाना अच्छा नहीं लगा, जल्दी-जल्दी दो निवाले खाए और छत पर आ गई। पीछे से माँ के चिल्लाने की आवाज आई , "यह क्या खाना भी ठीक से नहीं खाया।" मेरी बेटी बाएं हाथ से गुड़िया छाती से लगाए, आराम से, भोलेपन से निश्चिंत हो सो रही थी। मेरी आँखें भर आईं। खाट पर बैठ गई, आगे की ओर झुककर बेटी के बाल संवारे। गले का हार खिसका और बेटी के ओठों से छू गया। उस चांदनी रात में दूर कहीं एक तारा टूटकर झड़ गया। बेटी की ओर देखते हुए मुझे नींद सी आ गई। मूंगों का हार छाती से जा टकराया।

अनुवादक का परिचय

जन्म- 1955, पुणे, महाराष्ट्र। प्राथमिक शिक्षा, पुणे। माध्यमिक शिक्षा , मेरठ , उत्तर प्रदेश। (हिंदी माध्यम)। एम. फिल व पी. एच. डी.-भाषा शिक्षण से सम्बंधित विषय में , दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा , खैरताबाद, हैदराबाद से।

स्व. डॉ. विजय राघव रेड्डी जी के साथ स्व. वासिरेड्डी सीतादेवी जी का तेलुगु उपन्यास मरीचिका और मंजुश्री का तेलुगु उपन्यास मनुशुलु – ममतलु का हिंदी अनुवाद किया। इनके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ और कविताओं का भी अनुवाद किया है जो अब तक अप्रकाशित हैं।

ADDRESS – Dr. M. Lakshmi Kantham

W/O. P. S. N. MURTHY,

H. No. 2-23-455, Plot No. 484, HMT Hills,

J.N.T.U. Post, Kukatpally,

HYDERABAD -500085. Telangana State.

Mobile No. 9866652284.

प्रदर्शनकारी कला के संदर्भ में कॉपी राइट

•

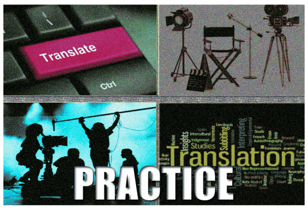

अभ्यास

कॉपीराइट क्या है?

कॉपीराइट और उससे संबंधित व्यापक कानून है कॉपीराइट अधिनियम, 1957 I इस अधिनियम के अनुसार, शब्द 'कॉपीराइट' का अर्थ है कोई कार्य को करने या उसका पर्याप्त भाग उपयोग करने या प्राधिकृत करने का एकमात्र अधिकार।

कॉपीराइट के अधीन कार्य

> तकनीक बदलने से नैतिकता के सिद्धांत नहीं बदलते, लेकिन तकनीकी बदलाव सिद्धांत विशेष के लागू किये जाने के संभावित परिणामों में फेर-बदल कर सकता है। ऐसा ही कॉपीराइट कानूनों के मामले में हो रहा है।

जब कोई व्यक्ति कोई ऐसा मूल कार्य निर्मित करता है, जो भौतिक माध्यम में स्थिर होता है, तो उसे अपने आप कार्य का कॉपीराइट मिल जाता है। कॉपीराइट स्वामित्व, स्वामी को कुछ, विशिष्ट तरीकों से कार्य का उपयोग करने का अनन्य अधिकार प्रदान करता है। अनेक प्रकार के कार्य कॉपीराइट सुरक्षा हेतु योग्य होते हैं, जिनमें ये शामिल हैं:

- ऑडियो-विज़ुअल कार्य, जैसे टीवी शो, फ़िल्में और ऑनलाइन वीडियो
- ध्वनि रिकॉर्डिंग और संगीतमय रचनाएं
- लिखित कार्य, जैसे भाषण, लेख, पुस्तकें और संगीतमय रचनाएं
- विज़ुअल कार्य, जैसे चित्रकारी, पोस्टर और विज्ञापन
- वीडियो गेम और कंप्यूटर सॉफ़्टवेयर
- नाटकीय कार्य, जैसे नाटक और संगीतमय शो

विचार, तथ्य और प्रोसेस कॉपीराइट के अधीन नहीं होते हैं। कॉपीराइट सुरक्षा हेतु योग्य होने के लिए, कार्य रचनात्मक और स्पर्श-करने योग्य माध्यम में स्थिर, दोनों होना चाहिए। नाम और शीर्षक, स्वयं कॉपीराइट सुरक्षा के अधीन नहीं होते हैं।

Surya Kant Verma
Mumbai

उल्लंघन किए बिना कॉपीराइट-सुरक्षित कार्य का उपयोग

कुछ परिस्थितियों में, स्वामी के कॉपीराइट का उल्लंघन किए बिना कॉपीराइट-सुरक्षित कार्य का उपयोग करना संभव होता है। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि आपका वीडियो तब भी कॉपीराइट उल्लंघन के दावे द्वारा प्रभावित हो सकता है, भले ही..

- कॉपीराइट स्वामी को श्रेय दिया हो
- उल्लंघन करने वाले वीडियो से कमाई करना प्रतिबंधित किया हो
- यू ट्यूब पर दिखाई देने वाले समान वीडियो देखे हों
- आई ट्यून , सीडी या डीवीडी पर सामग्री खरीदी हो

- टीवी, फ़िल्म थिएटर या रेडियो से स्वयं सामग्री रिकॉर्ड की हो
- बताया हो कि "कोई कॉपीराइट उल्लंघन नहीं है"

कॉपीराइट ट्रेडमार्क और पेटेंट

कॉपीराइट केवल एक प्रकार की बौद्धिक संपदा होती है। यह ट्रेडमार्क के समान नहीं होता है, जो ब्रांड नाम, कहावतों, लोगो और अन्य पहचानकर्ताओं को अन्य लोगों द्वारा कुछ उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने से सुरक्षित रखता है। यह पेटेंट कानून से भी भिन्न होता है, जो आविष्कारों को सुरक्षित रखता है।

कॉपीराइट और गोपनीयता

केवल इसलिए कि आप किसी वीडियो, चित्र या ऑडियो रिकॉर्डिंग में प्रकट होते हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि आपके पास उसका कॉपीराइट है। उदाहरण के लिए, अगर आपकी मित्र ने आप दोनों के बीच के किसी वार्तालाप को फ़िल्माया है, तो उसके पास अपने द्वारा बनाई गई उस वीडियो रिकॉर्डिंग का कॉपीराइट होगा। आप दोनों द्वारा कही जा रही बातें तब तक स्वयं वीडियो से अलग से कॉपीराइट के अधीन नहीं होती हैं, जब तक कि इसके बारे में पहले ही तय न कर लिया गया हो।

अगर आपके मित्र या किसी अन्य व्यक्ति ने आपकी अनुमति के बिना आपका कोई वीडियो, चित्र या रिकॉर्डिंग अपलोड कर दिया है और आपको लगता है कि यह आपकी गोपनीयता या सुरक्षा का उल्लंघन करता है, आप एक गोपनीयता शिकायत दर्ज करा सकते हैं।

कॉपीराइट सही और गलत

जब से संगीत और कला ने मंदिर और महलों के बाहर कदम रखा है, तब से शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल की तरह इनका व्यवसायीकरण भी बड़े मूर्खतापूर्ण ढंग से हुआ है। कॉपीराइट कानून तकनीकी उन्नति के साथ ताल मिलाने में विफल रहा है। नतीजतन किसी की भी मौलिक संरचना अब हर किसी के पास पहुंच जाती है। अदालतों में साइबर पाइरेसी को लेकर तो मामले चल ही रहे हैं, इसके अलावा रेडियो या सार्वजनिक स्थानों पर रिकॉर्ड हुआ संगीत सुनाने को लेकर चल रहे पुराने विवादों का अभी निपटान नहीं हो पाया है। हाल के हफ्तों में आए दो फैसलों में इन पर ध्यान दिया गया है। सुपर कैसेट्स इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम म्यूजिक ब्रॉडकास्ट लिमिटेड मामले में दिए गए फैसले में उच्चतम न्यायालय ने कॉपीराइट बोर्ड द्वारा अंतरिम अनिवार्य लाइसेंस देने के मसले पर बात की। जैसा कि ज्यादातर कॉपीराइट मामलों में होता है, इसमें भी जनहित और व्यावसायिक हित का टकराव था। किसी भी रचना के बौद्धिक संपत्ति अधिकार उसके रचयिता के पास होते हैं और वह कई कारणों से इसके प्रकाशन या प्रसारण को रोक सकता है। इसकी एक वजह ज्यादा रॉयल्टी की मांग भी हो सकती है। या फिर रचयिता को लगता हो कि उसकी रचना की वजह से उसकी जान को खतरा हो सकता है। यह चिंता भी वाजिब है क्योंकि आजकल के असहिष्णु समय में किताबों, फिल्मों और यहां तक कि कार्टूनों पर भी अतिवादी प्रतिक्रियाएं आ रही हैं, वह भी उन पक्षों से जिनसे इसकी उम्मीद नहीं होती है। ऐसे हालात में जनता को मनोरंजन के अधिकार और जिंदगी के संवद्र्घन से वंचित रहना पड़ता है।

चूंकि यह मुश्किल वैश्विक स्तर की है इसलिए ज्यादातर लोकतांत्रिक देशों ने कला रचनाओं के लिए अनिवार्य लाइसेंसिंग जारी करने वाले कानून बनाए हैं। भारत में कॉपीराइट अधिनियम की धारा 31 के तहत लाइसेंस जारी करने का अधिकार कॉपीराइट बोर्ड को दिया गया है। हालांकि इसके लिए कुछ शर्तें भी तय की गई हैं। मसलन लाइसेंस तभी जारी किया जा सकता है जब रचना को सार्वजनिक तौर पर प्रकाशित किया गया हो व उसका प्रदर्शन किया गया हो या कॉपीराइट मालिक ने रचना के दोबारा प्रकाशन या

प्रदर्शन से इनकार कर दिया हो, जिस कारण इसे जनता से दूर रखा जा रहा हो या फिर कुछ शर्तों पर उसके प्रसारण की अनुमति से इनकार कर रहा हो।

ब्रिटेन में अनिवार्य लाइसेंस जारी करने की शुरुआत 1709 में 'ऐनी कानून' से हुई है। नए कानूनों के तहत अगर रचना के बदले खासी रॉयल्टी का भुगतान किया गया है, तो इसे कॉपीराइट का उल्लंघन करार नहीं दिया जा सकता है। कॉपीराइट पर ऑस्ट्रेलियाई कानून, भारतीय कानून की धारा 31 से मिलता-जुलता ही है। अमेरिका में मुक्त प्रसारण को कॉपीराइट की दरकार नहीं होती है। चीन में भी अंतरराष्ट्रीय रिकॉर्डिंग के लिए 'बर्ने संधि' का पालन करता है जबकि देसी रिकॉर्डिंग को बिना किसी लाइसेंस या भुगतान के रेडियो और टेलीविजन पर प्रसारित किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष मसला यह था कि क्या कॉपीराइट बोर्ड अंतरिम आदेश जारी कर सकता है? यह सवाल बेहद अहम है क्योंकि अक्सर यही बात ज्यादा मायने रखती है। अंतरिम आदेश के बाद विवाद सुलझाने में लगने वाला समय शिकायत के इस प्रमुख मसले से ध्यान हटा देता है। समय के साथ गाने व फिल्में पुरानी हो जाती हैं और उनकी व्यावसायिक कीमत घट जाती है। इनके रिलीज होने के कुछ महीने पहले और कुछ महीने बाद तक ही इनकी कीमत सबसे ज्यादा होती है। मौजूदा मामले में बोर्ड को महसूस हुआ कि उसके पास अनिवार्य लाइसेंस जारी करने के लिए अंतरिम आदेश देने का अधिकार नहीं है। लेकिन दिल्ली उच्च न्यायालय ने इसके उलट फैसला दिया। इसके बाद मामला उच्चतम न्यायालय पहुंचा।

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि बोर्ड के पास अनिवार्य लाइसेंस जारी करने का अधिकार नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने अपने फैसले में कहा कि अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है, जो बोर्ड को यह अधिकार देता हो इसलिए अद्र्घन्यायिक संस्था होने के बावजूद वह ऐसा नहीं कर सकता है। कॉपीराइट विवादों में इस तरह के अंतरिम आदेश, अंतिम आदेश जैसे ही हो सकते हैं। कुछ महत्त्व वाला एक और फैसला दिल्ली उच्च न्यायालय ने इंडियन परफॉर्मिंग राइट्स सोसाइटी लिमिटेड बनाम सीआरआई इवेंट्स लिमिटेड मामले में दिया। इस जटिल मसले पर फैसला सुनाते हुए उच्च न्यायालय ने कहा कि फिल्म के कॉपीराइट धारकों से अनुमति लेकर संगीत चलाने वाले एफएम चैनलों, होटलों, कार्यक्रम आयोजकों और अन्य को गानों के संगीतकार व गीतकार से अलग अनुमति लेने की जरूरत नहीं है। जब भी कोई गाना रिकॉर्ड किया जाता है, तो वह गीतकार, संगीतकार और गायक की संयुक्त रचनात्मक प्रतिभा का नतीजा होता है। मसला था कि क्या किसी गाने के लिए गीतकार और संगीतकार से अतिरिक्त अनुमति लेने की दरकार है?

कॉपीराइट धारकों के संगठन, सोसायटी के तर्कों को खारिज करते हुए उच्च न्यायालय ने कहा कि किसी अतिरिक्त अनुमति की दरकार नहीं है। उच्च न्यायालय ने यह फैसला 1977 में आईपीआरएस बनाम ईस्ट इंडिया मोशन पिक्चर्स मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा सुनाए गए फैसले के आधार पर दिया। इस फैसले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 13 (4) को समझाया था। इसमें कहा गया था, 'एक फिल्म या गाने के कॉपीराइट का असर किसी भी काम, जो भी फिल्म का हिस्सा था, के अलग कॉपीराइट पर नहीं पडऩा चाहिए।'

इस जटिल प्रावधान पर कई फैसले आए हैं। उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया, 'हमारा कॉपीराइट कानून बेहद जटिल है क्योंकि इसके कुछ प्रावधानों की भाषा ऐसी है कि उसके कई मतलब निकाले जा सकते हैं।' कई बार न्यायिक मतलब आम समझ से परे होते हैं। कोई सामान्य व्यक्ति अदालत के इस वाक्य का क्या मतलब निकालेगा, 'एकीकरण का मतलब जुड़ जाना नहीं होता ठीक वैसे ही जैसे अलगाव का मतलब टूटना नहीं होता'? या 'एकीकरण एक मुश्किल विचार है। अलग-अलग मामलों में इसके भिन्न अर्थ निकलते हैं मसलन एकत्रीकरण, एकीकरण, समेकन, समावेश, संयोग, संघटन।'

प्लेगियरिज़्म और कॉपीराइट क़ानून की उलझन

किसी दूसरे रचनाकार की रचना को अपना बताने या चोरी करने के कृत्य को अंग्रेजी में प्लेगरिज़्म कहते हैं। अभी तक इस संबंध में

स्पष्ट क़ानून का अभाव है। हिंदुस्तान में प्रकाशित स्पष्टीकरण में भी कविता को चुराकर अपने नाम से प्रकाशित करवाने वाले शख्स विजय कुमार सिंह की केवल निंदा की गई है। कुछ दिनों पहले प्रख्यात उपन्यासकार चेतन भगत ने भी थ्री इडियट्स के प्रोड्यूसर पर अपने उपन्यास फाइव प्वाइंट के कुछ अंशों की चोरी का आरोप लगाया था।

आमतौर पर कॉपीराइट के स्थानांतरण से पहले फिल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक, कलाकार या लेखक के साथ एक समझौतानामा पर हस्ताक्षर करता है। इस समझौतानामा द्वारा कलाकार या लेखक अपनी रचना का कॉपीराइट फिल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक को दे देते हैं। जबकि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि रचना पर मालिकाना हक़ हमेशा रचनाकार के पास बना रहे और भविष्य में मिलने वाली रॉयल्टी में भी उसे आनुपातिक हिस्सा मिलता रहे, किंतु भारत में अभी ऐसा नहीं हो पा रहा है।

हालांकि इन घटनाओं को हम कॉपीराइट क़ानून से जोड़ कर नहीं देख सकते, क्योंकि प्लेगरिज़्म और कॉपीराइट में भिन्नता है। फिर भी दोनों के बीच चोली-दामन का रिश्ता तो ज़रूर है। सच कहा जाए तो दोनों एक-दूसरे से अलग रहकर भी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कॉपीराइट का शाब्दिक अर्थ है कलाकार या लेखक का स्वयं के सृजन पर मालिकाना हक़। जब कॉपीराइट क़ानून के तहत संरक्षित रचना का किसी के द्वारा मूल रचनाकार की जानकारी या मर्जी के बिना इस्तेमाल किया जाता है तो उसे कॉपीराइट क़ानून का उल्लंघन कहा जाता है।

इंटरनेट के जमाने में कॉपीराइट एक्ट की प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है, क्योंकि आजकल सबसे ज़्यादा कॉपीराइट क़ानून को तोड़ा जा रहा है। कट-पेस्ट का चलन इस कदर बढ़ गया है कि मौलिकता किसी अंधेरे के गर्त में चली गई है। बावजूद इसके इसकी फिक्र किसी को नहीं है। छपास की भूख के आगे सभी तरह का नशा कमतर है। पड़ताल से ज़ाहिर है कि कोई भी प्रकाशक रचनाओं की मौलिकता का सत्यापन नहीं करता। फिल्म इंडस्ट्री की हालत इस संदर्भ में सबसे ज़्यादा ख़राब है। गीत, संगीत और स्क्रिप्ट की चोरी यहां बेहद ही आम है। फिल्म इंडस्ट्री के नामचीन रचनाकार भी इस तरह का कृत्य करने से गुरेज नहीं करते। किसकी रचना चोरी हुई या फिर किसकी रचना कब बिना मूल लेखक की अनुमति के चुपके से फिसल कर बाज़ार में आ गई, पता ही नहीं चल पाता। बृजेश कुमार त्यागी या उनके जैसे दूसरे जागरूक लेखक या कलाकार ने चोरी की जानकारी दे दी या कॉपीराइट क़ानून के उल्लंघन के बारे में बता दिया तो ठीक है, अन्यथा गंदा है पर धंधा है वाली तर्ज पर सब कुछ बाज़ार में चल रहा है।

1957 में बने कॉपीराइट एक्ट में सबसे बड़ी खामी यह है कि वह मूल रचनाकारों को न्याय नहीं दिला पा रहा है। संगीतकार, गीतकार, लेखक एवं अन्यान्य कलाकार अपनी कला की सही क़ीमत पाने से महरूम रह जाते हैं। उनकी कला को प्रोड्यूसर और प्रकाशक औने-पौने दामों में ख़रीद लेते हैं और फिर उसी कला या रचना के ज़रिए लाखों-करोड़ों कमाते हैं। बानगी के तौर पर शकील बदायूंनी द्वारा लिखित और गुलाम मोहम्मद द्वारा संगीतबद्ध किए गए-भगवान तेरी दुनिया में इंसान नहीं है, गीत से फिल्म के प्रोड्यूसर ने तो लाखों कमाए, पर आश्चर्यजनक रूप से इस गीत के संगीतकार गुलाम मोहम्मद की मौत बदहाली में हुई। गुलाम मोहम्मद की तरह प्रसिद्ध संगीतकार खेमचंद प्रकाश की पत्नी की मौत भी मुंबई की सड़कों पर भीख मांगते हुई थी। एक फिल्म में बहुत से कलाकार मसलन संगीतकार, गीतकार एवं लेखक आदि काम करते हैं और उनके द्वारा सृजित रचना फिल्म बनने के बाद उनकी नहीं रह जाती है। समझौते के माध्यम से उनकी कला पर अधिकार फिल्म प्रोड्यूसर का हो जाता है। इसी तरह लेखक या कवि की रचना किसी अख़बार या पत्रिका में छपने के बाद उसकी नहीं रह जाती है। (अधिकांश प्रकाशकों के नियम ऐसे रहते हैं कि रचना के प्रकाशन के बाद उस पर कॉपीराइट प्रकाशक का हो जाता है)

आमतौर पर कॉपीराइट के स्थानांतरण से पहले फिल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक, कलाकार या लेखक के साथ एक समझौतानामा पर हस्ताक्षर करता है। इस समझौतानामा द्वारा कलाकार या लेखक अपनी रचना का कॉपीराइट फिल्म प्रोड्यूसर या प्रकाशक को दे देते हैं। जबकि ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि रचना पर मालिकाना हक़ हमेशा रचनाकार के पास बना रहे और भविष्य में मिलने वाली

रॉयल्टी में भी उसे आनुपातिक हिस्सा मिलता रहे, किंतु भारत में अभी ऐसा नहीं हो पा रहा है। फिलहाल भारत में कॉपीराइट एक्ट में संशोधन का प्रस्ताव है, लेकिन यह संशोधन स़िर्फ गीत एवं संगीत से जुड़ा हुआ है। इस मामले में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य भारत से काफी बेहतर है। आस्ट्रिया एवं जर्मनी में कॉपीराइट एक्ट से जुड़ी नियमावली कलाकारों और लेखकों के अनुकूल हैं। वहां मूल कलाकार एवं लेखक को ताउम्र उसकी रचनाओं के लिए रॉयल्टी मिलती है। इस तरह के क़ानून से कलाकारों और लेखकों का उनकी रचनाओं पर मालिकाना हक़ हमेशा बना रहता है। हो सकता है कि कलाकारों और लेखकों को इस तरह के अधिकार देने की वकालत करना समझौते की स्वतंत्रता का हनन हो, परंतु इतना तो स्थापित सत्य है कि कलाकारों और लेखकों को उनकी रचनाओं पर हमेशा के लिए अधिकार देने से उनका आर्थिक शोषण काफी हद तक रुक सकता है।

निष्कर्ष

नैतिकता के सिद्धांत नहीं बदलते। लेकिन किसी सवाल या समस्या पर उन्हें लागू करने से पहले उपलब्ध विकल्पों में से उचित चयन के लिए हमें उस स्थिति के तथ्यों पर गौर करना होता है। हमें गौर करना होता है कि किसी खास चयन के संभावित परिणाम क्या हो सकते हैं। तकनीक बदलने से नैतिकता के सिद्धांत नहीं बदलते, लेकिन तकनीकी बदलाव सिद्धांत विशेष के लागू किये जाने के संभावित परिणामों में फेर-बदल कर सकता है। ऐसा ही कॉपीराइट कानूनों के मामले में हो रहा है। आज तकनीकी बदलावों ने उन नैतिक मानदंडों को समस्याग्रस्त कर दिया है, जिनके आधार पर ये कानून बनाये गये हैं, और जो समाज के लिए बेहतर नीतियों का निर्धारण करते हैं। कला पर एकाधिकार होना चाहिए या नही ये विवाद का विषय है। जहां तक कॉपी राइट एक्ट का प्रश्न है यह कलाकारों, रचनाकारों को लिए किसी वरदान से कम नहीं है। क्योंकि यह एक्ट उन्हे उनकी कलाकृति रचना का स्वामित्व प्रदान करता है। वर्तमान के सायबर युग में जबकि सारी दुनिया एक स्कीन पर इकट्ठी हो गई है ऐसे में कॉपी राइट एक्ट ही एक मात्र सहारा है किसी भी रचना या कलाकृति को दुरुपयोग से बचाने का। कॉपी राइट एक्ट मूल सर्जक के अधिकारों की रक्षा करता है और मूल रचयिता को अपना मौलिक सृजन को किसी को भी वितरित करने या बेचने का अबाधित अधिकार प्रदान करता है।

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति में वर्तमान विकास का विकल्प

शोध

सारांश

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति और विकास की अवधारणा दोनों ही वर्तमान समय में भी उतनी ही महत्तवपूर्ण हैं जितना की ये जयप्रकाश नारायण के समय में रही | यहाँ पर संपूर्ण क्रांति का आशय एक ऐसे विकास के विकल्प की तलाश से है जो की आज के सामाजिक परिवेश में संपूर्ण विकास को ला सके और समस्त जन का कल्याण कर सके|

मुख्य बिंदु : संपूर्ण क्रांति, वर्तमान विकास और विकल्प

जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति और विकास की अवधारणा दोनों ही वर्तमान समय में भी उतनी ही महत्तवपूर्ण हैं जितना की ये जयप्रकाश नारायण के समय में रही ||

भूमिका

जयप्रकाश नारायण विकास को आगे बढ़ने और इसे बनाए रखने के लिए जीवन पर्यंत प्रयासरत रहे| वे समानता पर आधारित समाज का निर्माण करने के पक्षधर थे, और अलग-अलग आंदोलनों के माध्यम से अपनी विचारधारा को आगे की पीढ़ियों तक पहुँचाने में सक्षम रहे| उनकी संपूर्ण क्रांति की अवधारणा एवं स्थापना 1974 में विद्यमान स्थिति के फलस्वरूप उत्पन्न हुई| जयप्रकाश नारायण का कहना था की हम सब को केवल मंत्रिमंडल, शासन या नेताओं में परिवर्तन लाने की बात नहीं करनी है, बल्कि एक नए समाज का हमें निर्माण करना है, और संपूर्ण क्रांति को स्थापित करना है|1 जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति के माध्यम से समाज को संपूर्ण रूप से बदलने का सपना देखा था और उनकी सोच थी कि एक ऐसे समाज का निर्माण होगा जिसका स्वरुप वर्तमान स्वरुप से भिन्न होगा| वे संपूर्ण क्रांति के माध्यम से संपूर्ण जीवन को भी बदलने की बात करते हैं, जिसमें जाति-पांति, शादी, राजनीति, अर्थनीति सभी को बदलकर एक नया समाज नए मन के साथ बने, यही उनकी कामना थी|

भारती देवी

पी. एच. डी.शोधार्थी

विकास एवं शांति अध्ययन विभाग

महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

जयप्रकाश नारायण का मानना था की संपूर्ण क्रांति सिर्फ भाषण या चर्चा करने से आने वाली नहीं है, इसके लिए समर्पित लोकसेवक एवं लोक–नेताओं की आवश्यकता है, जिनमें किसी तरह का व्यक्तिगत स्वार्थ ना हो, कई तरह की सरकारी नीतियां बना देने से भी काम नहीं बनेगा इसमें तो बच्चे, बूढ़े, महिलाओं सभी को शामिल होना होगा, सहयोग एवं परस्पर प्रेम तथा निर्भरता ही इस तरह की क्रांति के लिए महत्वपूर्ण होगा|2

उद्देश्य

- जयप्रकाश नारायण के संपूर्ण क्रांति के विचार की अवधारणा को समझाना|
- संपूर्ण क्रांति के विचार को विकास के साथ संलग्न करना|
- संपूर्ण क्रांति की विचारधारा को वर्तमान समय में समाज के विकास के लिए प्रयोग मे लाना|

जयप्रकाश नारायण का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जो अहिंसा पर आधारित हो और साथ ही पूरे समाज के विकास पर टिकी हो| वे काफी कुछ हद तक आदर्श सोवियत नमूने के समाजवाद3 के विचारों से प्रभावित थे और उसे दैनिक जीवन में पूरे समाज के लिए लागू करना चाहते थे | उन्होंने गांधी के बहुत से विचारों का विरोध किया जिसमें गांधी के ट्रस्टीशिप और मशीनों के बारे में उनकी राय की खुलकर आलोचना की, परंतु देश की आजादी को लेकर उनके जो विचार थे कि आजादी हिंसक क्रांति के बिना नहीं मिल सकती है, लेकिन जब आजादी बिना हिंसक क्रांति के मिल गई तो जयप्रकाश नारायण का गांधी और उनकी आहिंसक समाज रचना के विचारों के प्रति उनका झुकाव बढ़ा| महात्मा गांधी की हत्या के बाद उन्होंने स्वयं जब देशभर में जाकर देखा की हजारों समर्पित कार्यकर्ता गांधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में लगे हुए हैं, लाखों लोगों को रोजगार भी इससे मिल रहा है, गांधी की अहिंसक समाज रचना की प्राप्ति के लिए वास्तव में प्रयास हो रहे हैं, यह देखकर वे चकित रह गए| जयप्रकाश नारायण ने सेवाग्राम, पवनार में विनोबा भावे एवं किशोरलाल मशरूबाला से बातचीत की एवं उनके कार्यों को स्वयं जाकर देखा जिसके बाद तो उनके विचार गांधी के विचारों के प्रति विचार और भी पक्के हो गए|4 अब वे समाजवाद से सर्वोदय की ओर बढ़े तथा पूरे जीवनभर एक ऐसे समाज की रचना में लगे रहे जिससे समाज से भेद की खाई को मिटा कर समरस समाज की रचना हो सके| जयप्रकाश नारायण मुख्य रूप में स्वतंत्रता और समानता को आधारभूत मूल्यों के रूप में स्वीकार करते हैं और सर्वोदय को ही सच्चे अर्थो में समाजवाद मानते हैं |

जयप्रकाश नारायण के विचारों में परिवर्तन बिनोवा के सत्याग्रह अर्थात लोकशिक्षण के तरीके के अपर्याप्त प्रतीत होने के बाद और बिहार आंदोलन के दौर में उनके विचारों में आमूलचूल परिवर्तन आए| जयप्रकाश ने यह अनुभव किया कि वगैर वर्ग–संघर्ष के बुनियादी परिवर्तन संभव नहीं है | इसी दौरान उन्होंने वर्ग-संघर्ष की अवधारणा को अहिंसा के साथ जोड़कर एक नई शुरुआत की | इसी दौर में केवल राजनितिक-आर्थिक परिवर्तन के बजाय समस्त परिवर्तन को दृष्टी बिंदु में रखते हुए उन्होंने संपूर्ण क्रांति की अवधारणा प्रतिपादित की| जयप्रकाश नारायण के विचार से केवल राजनितिक और आर्थिक परिवर्तन ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि एक नए समाज की रचना के लिए जीवन के सभी पहलुओं में क्रांतिकारी समतामूलक और नैतिक बदलाव की आवश्यकता को समझना और उसके लिए प्रयासरत होना अनिवार्य है |5

जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति को कुल सात भागो में विभाजित किया : 1) सामाजिक 2) आर्थिक 3) राजनीतिक: और इसके

साथ-साथ 4) सांस्कृतिक 5) मानसिक 6) नैतिक-अध्यात्मिक और 7) शैक्षिक क्रांति|6 इन सब को बगैर प्राप्त किए संपूर्ण क्रांति हो पाना संभव नहीं है |

संपूर्ण क्रांति और विकास

जयप्रकाश नारायण संपूर्ण क्रांति की अवधारणा को वास्तविक विकास के लिए विभिन्न क्षेत्रों में लागू करने पर बल देते हैं जिसमें कि सामाजिक से लेकर नैतिक सभी क्षेत्र शामिल हैं | जे. पी. विकास के लिए यह प्रयोग लगातार करते रहे की बगैर राजनितिक शक्ति के नैतिक शक्ति को प्राप्त करना असंभव है, जिसके लिए वे कुल 20 वर्षों तक काम करते रहे और इसे आगे बढ़ाने के लिए गांधी के सत्याग्रही संघर्ष का रास्ता पकड़ा और कहा "मैं गांधीजी का छोड़ा काम पूरा कर रहा हूँ|" जे. पी. हमेशा जनताकीप्रत्यक्ष शक्ति को प्रकट करना चाहते थे और उस शक्ति से नई रचना करना चाहते थे|7

जे पी, लोहिया और गांधी तीनों विकास को आगे बढ़ने के लिए लोकतंत्र की सहभागिता पर बल देते हैं| इन तीनों ही विचारकों में समाज आदर्श का आग्रह था कि हर पड़ोस को लोकतंत्र की इकाई माना जाए और इस इकाई की व्यवस्था जनता अपनी आपसी सहयोग की शक्ति से चलाए| सरकार की भूमिका यह हो कि केवल इसे सहयोग प्रदान करे ना की इसके मध्य अवरोध पैदा करे | ऐसा लोकतंत्र चाहिए जो परिवर्तनशील हो, जो क्रांति को गति दे और ऐसी समझ के साथ कार्य हो, जो लोकतंत्र को संरक्षित रखे | ऐसे लोकतंत्र में जनमत एक हथियार होगा; सहमति की शक्ति होगी; परिवर्तन के लिए खुला संघर्ष अपवाद स्वरुप रहेगा|8

जे. पी. के संपूर्ण क्रांति का विचार किसी एक क्षेत्र तक सीमित ना रहकर सभी क्षेत्रों तक फैला हुआ है जो मानव के विकास में अहम भूमिका अदा करते हैं| 1974 के बिहार छात्र आंदोलन का नेतृत्व करते हुए कहा - केवल संपूर्ण क्रांति ही है, जो कि अकेले देश की सारी समस्याओं को हल करने में सक्षम हो सकती है और एक नए समाज की रचना कर सकती है|9 जे. पी. संपूर्ण क्रांति की विकास के उस चरम तक खुद ही व्याख्या करते हैं, जैसा कि वे सर्वोदय के सिद्धांत के बारे में कहते हैं- दोनों ही विचारधाराओं में शायद ही कोई अंतर है| संपूर्ण क्रांति जीवन की आधारभूत चीजो में परिवर्तन है और सर्वोदय इसके साथ ही लागू हो सकता है|10

संपूर्ण क्रांति की उपयोगिता

जे. पी. के विचार से संपूर्ण क्रांति भारत के लिए तो है ही, साथ ही साथ पूरे तीसरी दुनिया के देशों के लिए भी है | समस्त तीसरी दुनिया के देशों के लिए लोकतंत्र की भूमिका एक विकराल समस्या की तरह मुँह बाहे खड़ी है | यह एक अहम बिंदु है कि लोकतंत्र कैसे विकसित करे जिसमें सबके लिए समान स्थान हो|11 वर्तमान समय में इसकी उपयोगिता इसलिए भी अधिक देखी जा सकती है, क्योंकि यह मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष की तरह संपूर्ण क्रांति का कोई बना बनाया सिद्धांत नहीं है, बल्कि समय के साथ हो रहे

परिवर्तनों के साथ सतत चलने वाले सिद्धांत हैं| इसकी उपयोगिता इस बात से ही स्पष्ट हो जाती है कि यह सिद्धांत आर्थिक अर्थ में समाज की समान आर्थिक संरचना के लिए भी क्रांति पैदा करता है |

यह मनुष्य की भौतिक और अध्यात्मिक दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और साथ ही इनकी मानव जीवन में क्या उपयोगिता है को भी ध्यान में रखती है और साथ ही साथ अपनी आवश्यकताओं को स्वयं कम रखना एक नैतिक मूल्य है का भी ज्ञान देती है | इसके आलावा प्राकृतिक–पर्यावरणीय फ्रेम वर्क देती है, जिसमें गाँव और शहर के प्रति पर्यावरणीय जिम्मेदारिओं को भी निर्धारित करती है| इसके सापेक्ष यह राजनितिक. सांस्कृतिक, शैक्षिक सीमाओं का भी प्रारूपण करती है12 जिसमें कि अधिक से अधिक जनमत का लाभ हो सके |

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह बात आसानी से कही जा सकती है कि जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति की अवधारणा किसी भी प्रकार से विकास को पूरा करने में सक्षम रही है वह चाहे राजनितिक, आर्थिक, सामाजिक, या सांस्कृतिक क्षेत्र हो या फिर अध्यात्मिक और नैतिक| इसे जीवन के हर पहलू पर पूरी तरह से लागू किया जा सकता है और समाज की आज की मौजूदा स्थिति में विकास का महत्त्वपूर्ण विकल्प कहा जा सकता है |

पादटिप्पणियां

1. जयप्रकाश नारायण , सम्पूर्ण क्रांति की खोज में : मेरी विचार-यात्रा भाग-2 , सर्व सेवा संघ प्रकाशन , संस्करण चौथा, वाराणसी 2006, पेज 5
2. वही
3. नन्द कीशोर आचार्य (संपादित), अहिंसा विश्वकोष, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2010. पृष्ठ. 356.
4. कांति शाह, जयप्रकाश की जीवन यात्रा, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, वाराणसी,2007, संस्करण –दूसरा, पृष्ठ-101-102,
5. नन्द कीशोर आचार्य (समादित), अहिंसा विश्वकोष, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, 2010. पृष्ठ. 357.
6. वही, पृष्ठ. 358.
7. आचार्य राम मूर्ति, जे पी की विरासत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृष्ठ. 12 .
8. वही, पृष्ठ. 12-13.
9. Bimal Prasad, Jayprakash Narayan; Quest and Legacy, VikashPublishig House Pvt. Ltd., New Delhi, 1992, p. 126.
10. Ibid, p. 127.
11. आचार्य राम मूर्ति, जे पी की विरासत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृष्ठ. 13.
12. वही, पृष्ठ. 154-155.

संदर्भ ग्रंथसूची-

- आचार्य, नन्द कीशोर (संपा.)(2010). *अहिंसा विश्वकोष*. जयपुर : प्राकृत भारती अकादमी |
- नारायण, जयप्रकाश(2006). *संपूर्ण क्रांति की खोज में : मेरी विचार-यात्रा भाग-2*. वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- नारायण, जयप्रकाश(2010). *भारतीय राज्य – व्यवस्था की पुनर्रचना: एक सुझाव*. वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- नारायण, जयप्रकाश(2010). *समाजवाद से सर्वोदय की ओर*. वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- राम मूर्ति, आचार्य(2010). *जे पी की विरासत*. वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- Prasad, Bimal(1992). *Jayprakash Narayan; Quest and Legacy*. New Delhi : Vikas Publishing House Pvt. Ltd.

जनपद भिण्ड (म0प्र0) कें कृषि विकास में विपणि की भूमिका : एक भौगोलिक अध्ययन

शोध

डॉ0 पुष्पहास पाण्डेय
पी–एच.डी.–नेट
सहायक प्राध्यापक, (भूगोल)
अनुदानित महाविद्यालय
सम्बद्ध छ0 शा0 म0
विश्वविद्यालय–कानपुर

&

शिवम् वर्मा
नेट–जे.आर.एफ.
शोध छात्र,
(भूगोल)–जीवाजी
विश्वविद्यालय, ग्वालियर

शोध सार

'सेवा – केन्द्र' वर्तमान युग में भिन्न–भिन्न प्रकार से न केवल मानव के विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हैं, अपितु विकास की अवधाराणा के क्रियान्वयन में भी इनकी मुख्य भूमिका होती है। विपणि, सेवा केन्द्रों में सर्वप्रमुख होते हैं। क्षेत्रीय विकास के साथ–साथ विविध मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति में विपणि अत्याधिक सहायक होते हैं। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में भी भिन्न–भिन्न क्षमताओं के विपणि केन्द्रों की उपस्थिति है। अध्ययन क्षेत्रान्तर्गत उपस्थित विपणि अनेकों क्रिया–कलापों के केन्द्र हैं। ये समस्त विपणि मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ अनेक रोजगार के अवसरों को भी प्रदान करते हैं। विभिन्न माध्यमों से आँकड़ो के संकलन का कार्य सम्पन्न कर उनका विश्लेषण एवं समान्यीकरण किया गया है।

विशिष्ट शब्द : विपणि, सेवा – केन्द्र, रोज़गार, क्षेत्रीय विकास

प्रस्तावना:

मानव जीवन को यथोचित ढंग से जीने हेतु सदैव सक्रिय रहता है और अपने सामर्थ्यानुसार अपनी व अपने परिवार की सुख – सुविधाओं में बढ़ोत्तरी हेतु प्रयत्नशील रहता है। मानवीय सुख–सुविधाओं की पूर्ति में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में विपणि की भूमिका होती है। विविध विपणि भिन्न–भिन्न क्षमताओं को आत्मसात् किये हुये होते हैं। अध्ययन क्षेत्र में वितरित विपणि विविध माँगों का प्रतिफल है और साथ ही साथ उनका विकास व क्षमता वृद्धि विभिन्न कारकों से भी प्रभावित रहते हैं। विपणि क्षमता व स्वरूप इत्यादि यह सुनिश्चित करते हैं, कि उनके द्वारा कितना क्षेत्र व कितनी जनसंख्या लाभान्वित होगी।

विभिन्न विद्वानों ने विविध विपणि सम्बंधी अध्ययन किये, लिण्डबर्ग (1966) ने मानव की व्यापारिक क्रिया–कलापों का अध्ययन किया, जो मूलतः विपणि पर आधारित होते हैं। ग्रेनियर व डोलोब्ज (1979) ने विपणन सम्बंधी क्रियाओं के जन्म हेतु क्षेत्रीय विभिन्नताओं को उत्तरदायी माना।

अध्ययन क्षेत्र :

जनपद भिण्ड (म0प्र0), 25° 55′ उत्तरी अक्षांश से 26° 48′ उत्तरी अ क्षांश एवं 78° 12 पूर्वी देशान्तर से 79° 05′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) के चम्बल सम्भाग के अन्तर्गत स्थित है। अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल 4459 वर्ग किलोमीटर है। जनपद भिण्ड (म0प्र0) में क्रमशः 6 विकास खण्ड अटेर,

भिण्ड, मेहगाँव, गोहद, रौन एवं लहार हैं।

जनपद भिण्ड (म0प्र0)

स्थिति एवं विस्तार

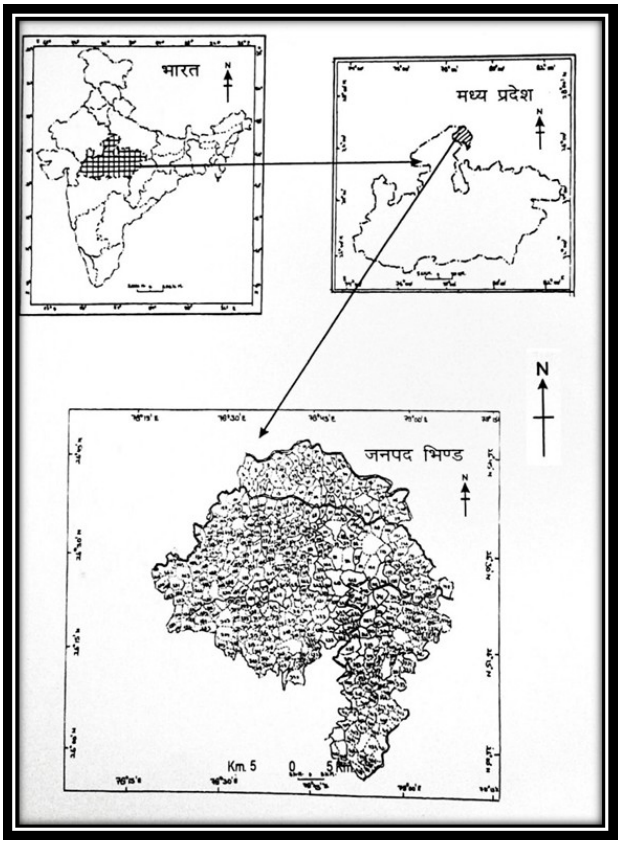

अध्ययन क्षेत्र में औसत वार्षिक वर्षा 759.2 मि0मी0 है, जबकि औसत तापमान 300 सेण्टीग्रेट के मध्य रहता है। विपणि सुविधाओं का क्षेत्रीय विकास में सक्रिय भूमिका होती है। विभिन्न क्षमताओं के विपणन केन्द्रों की उपस्थिति जनपद भिण्ड (म0प्र0) में है।

परिकल्पना निर्माणः

- विपणि विविध वस्तुओं व सेवाओं की प्राप्ति के केन्द्र होते हैं।
- विपणि में रोजगार अवसरों की उपस्थिति होती है।
- विपणि विकास व मानव विकास एक दूसरे के पूरक हैं।
- विपणि क्षमताओं में स्थानिक–कालिक भिन्नता पायी जाती है।

उद्देश्य :

- अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में विपणि के स्थानिक वितरण का अध्ययन करना।
- अध्ययन में विपणि स्वरूप के कारणों को जानना।
- अध्ययन क्षेत्र में विपणि क्षमताओं को ज्ञात करना।
- अध्ययन क्षेत्र में विपणि सम्बंधी समस्याओं को ज्ञात कर उन्हें दूर करने हेतु मार्ग प्रशस्त करना।

शोध विधितन्त्रः

अध्ययन में विविध प्राथमिक व द्वितीयक आँकड़ों को विभिन्न माध्यमों से संग्रहीत कर, उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा। विश्लेषणोपरान्त सारणीकरण सम्पन्न कर उनका प्रस्तुतिकरण किया जायेगा। अध्ययन क्षेत्र में मानचित्र की भी सहायता ली जायेगी।

विश्लेषण एवं व्याख्या

विपणि उपलब्धता :

कृषि को प्रभावित करने वाले अवस्थापनात्मक कारकों में विपणि का महत्व सर्वोपरि है, क्योंकि वर्तमान समय में, विविधि मानवीय कार्य पूर्णतः जीवननिर्वाहक नहीं रह गया है। सूचना तकनीकि के विकास के परिणामस्वरूप, न केवल विविधि भागों में कृषि आदि उत्पादों की माँग तथा मूल्य के अनुसार ही उस क्षेत्र में विशेष शस्योत्पादन औधोगिक उत्पादन इत्यादि निर्धारित होता है, तथा विभिन्न उत्पादित पदार्थों के उचित मूल्य की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित बाजार की अत्याधिक आवश्यकता होती है।

विपणि उपलब्धता, वस्तुओं की मांग में वृद्धि कर न केवल विकास एवं विस्तार को अभिप्रेरित करता है, अपितु बाजारों की उपलब्धता के कारण निम्न उर्वर भूभाग पर भी शस्योत्पादन सम्भव हुआ है। कृषि उपजों के विपणन की दृष्टि से विपणि के तीन वर्ग होते हैं, जो क्रमशः स्थानीय, राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय हैं, किन्तु अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) में ग्राम प्रधान आर्थिकी वाले सामयिक विपणियों की विशेष उपयोगिता है। अध्ययन क्षेत्र में बाजार सुविधा की उपलब्धता का प्रभाव न केवल कृषि विकास को सुनिश्चित करता है, अपितु क्षेत्रीय संगठन एव प्रादेशिक क्षेत्रीय इकाइयों के आर्थिकी को निर्धारित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, विपणि सुविधाओं के अन्तर्गत सामयिक विपणि, फुटकर दैनिक विपणि, फुटकर व थोक दैनिक विपणि, पशु मेला व विपणि आदि को सम्मिलित किया गया है।

सामयिक बाजार :

कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था वाले अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) के ग्रामीण क्षेत्रों में, न केवल विभिन्न प्रकार के कृषि उत्पादों के क्रय–विक्रय, अपितु ग्राम जनसंख्या के दैनिक उपयोग की वस्तुओं के क्रय–विक्रय हेतु सामयिक बाजारों की उपयोगिता होती है।

स्थानीय व्यापारी फुटकर वस्तुओं को एक सप्ताह में एक बार या दो बार सामयिक बाजारों में उपलब्ध होते है। इन सामयिक विपणि में दैनिक वस्तुओं के अलावा कृषि उत्पादों का क्रय–विक्रय भी होता है। अध्ययन क्षेत्र में इन सामयिक बाजारों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है।

स्थाई फुटकर दैनिक विपणि :

अध्ययन क्षेत्र के सभी 11 नगरीय क्षेत्रों में स्थाई विपणियों की सुविधा साप्ताहिक बंदी दिवस को छोड़कर सभी दिनों में उपलब्ध है। इनमें से प्रत्येक स्थाई विपणि द्वारा सेवित अधिवासों की औसत संख्या 38.16, सेवित औसत क्षेत्र 371.58 वर्ग किमी0 एवं सेवित औसत जनसंख्या 119046.58 व्यक्ति हैं।

अर्द्धसाप्ताहिक बाजार :

अध्ययन क्षेत्र में अर्द्धसाप्ताहिक बाजारों की संख्या 11 है, जो क्रमशः उद्योतगढ़, कचनांव खुर्द, कचनांव कलां, खेरियातोर, नुन्हाटा, सगरा, बारा, धौरखा, रौन, विस्वारी एवं रहावली उबारी है। इनमें से प्रत्येक के द्वारा सेवित अधिवासों की औसत संख्या 41.63, सेवित औसत क्षेत्र 405.36 वर्ग किमी0 एवं सेवित औसत जनसंख्या 129869 व्यक्ति है।

साप्ताहिक विपणि :

अध्ययन क्षेत्र में साप्ताहिक बाजारों की कुल संख्या 30 है, जिनका वितरण अध्ययन क्षेत्र के वृहदाकार अधिवासों में ही देखने को मिलता है। ये साप्ताहिक बाजार अध्ययन क्षेत्र में सेवा उपलब्ध कराते हैं। इनके द्वारा सेवित अधिवासों की औसत संख्या 15.26 सेवित औसत क्षेत्र 148.63 वर्ग किमी0 एवं सेवित औसत जनसंख्या 4761.63 व्यक्ति है। अध्ययन क्षेत्र जनपद भिण्ड (म0प्र0) की बाजार सुविधाओं का विवरण तथा वितरण प्रतिरूप को मानचित्र में प्रस्तुत किया गया है।

जनपद भिण्ड (म0प्र0): बाजार सुविधायें

क्र0	विपणि सुविधाएं	सुविधायुक्त केन्द्र		सेवित अधिवासों की औसत संख्या	सेवित औसत क्षेत्र (वर्ग किमी0 में)	सेवित औसत जनसंख्या
		संख्या	समस्त आबाद अधिवासों का प्रतिशत			
1	स्थाई विपणि	12	2.62	38.16	371.58	119046.58
2	अर्द्ध विपणि	11	2.40	41.63	405.36	129869.00
3	साप्ताहिक विपणि	30	6.55	15.25	148.63	47618.63
4	पशुमेला	12	2.62	38.16	371.58	119046.58

स्त्रोत : सूचना एवं सांख्यकी विभाग – जनपद भिण्ड (म0प्र0)

निष्कर्ष एवं सुझाव :

तालिका एवं मानचित्र के अवलोकन से स्पष्ट है, कि अध्ययन क्षेत्र में उपलब्ध विपणि सुविधाऐं न केवल अपर्याप्त है, अपितु इनका स्थानिक वितरण भी अत्याधिक असमान परिलक्षित होता है। अध्ययन के समुचित विकास हेतु आवश्यकतानुसार विपणि स्वरूप को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है इस हेतु विपणि के स्थानिक वितरण को सुधारने के लिये सरकार द्वारा आर्थिक सहायता प्रदान की जाये, स्थानीय लोगों को विविध क्रियाओं हेतु दक्ष किया जाये, आदि। इसे अपनाकर अध्ययन क्षेत्र की असंख्य समस्याओं का निस्तारण स्वतः हो जायेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- District Hand Book of Bhind (M.P.)
- Saxena, H.M. (2004) : Marketing Geography, Rawat Publication, Jaipur.
- Jain, A.K. (1993) : Marketing in an Agricultural Region, Northern Book Centre, New Delhi.
- चान्दना, आर0सी0 (2001) : जनसंख्या भूगोल, कल्याणी पब्लिशर्स।

मधु कांकरिया के उपन्यासों में नारी दशा और दिशा

शोध

मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्ष और द्वंद्व के साथ-साथ धर्म के खिलाफ अपनी विरोधी विचारधारा को पात्रों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। नारी की स्थिति-परिस्थिति व्यवस्था के विरोध में उलझी रहती है।

डॉ. चरण जीत सिंह सचदेव
एसोसिएट प्रोफेसर
खालसा कॉलेज, हिंदी-विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
9811735605

आधुनिक लेखिकाओं में मधु कांकरिया का नाम अग्रणी है। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी के विविध पक्षों को देखा-परखा, रूढ़ियों, विकृतियों और विडंबनाओं पर खुलकर विरोध भी किया है। मधु कांकरिया ने उपन्यासों में नारी की समाज और परिवार में वास्तविक स्थिति के साथ उनकी दशा और दिशा में व्यक्त संत्रास को दिखाने का प्रयास किया है। उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण कर जीवन की निराशाओं, अंर्तविरोधों तथा विषमताओं का यथार्थ चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में 'खुले गगन के लाल सितारे', 'सलाम आखिरी', 'पत्ताखोर', 'सेज पर संस्कृत', आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

'खुले गगन के लाल सितारे' में मध्यवर्गीय जीवन में व्याप्त दशा को अनेक स्तरों पर आर्थिक अभाव, बेकारी, लाचारी से उत्पन्न दर-दर की भटकन, उससे उत्पन्न निराशा, हीनता से उत्पन्न स्त्री की स्थिति से जुड़ी समस्याएँ हैं। उपन्यास में नायिका मणि की आर्थिक असुरक्षा के कारण माँ से कहा सुनी हो जाती है। मणि पढ़ी-लिखी एवं आधुनिक विचारों वाली युवती है। वह समाज एवं परिवार में अपना अस्तित्व बनाने के लिए जी तोड़ मेहनत करती है। माँ मणि की शादी कर अपने उत्तरदायित्वों से पीछा छोड़ना चाहती है। मणि जब इस बात का विरोध करती है तो माँ उसे लड़की होने का बोध करा, बोझ से अवगत कराती है। माँ कहती है-''बेटी पराया धन, दूसरों की अमानत, मरे न माथा छोड़े ठीक से रहो वरना।'' माँ अपने माथा पर तोड़ियाँ डाले मणि को समझाने का प्रयास करती है। मणि बौद्धिकता के अनुसार मां को कर्तव्य और अधिकार की परिभाषा समझाते हुए कहती है-''मैं यहां न आपके रहमोकरम पर हूं न अम्मा के। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार है- किसी भी अविवाहित पुत्री का अपने पिता के घर आजीवन रहने का। हिंदु कोडबिल ने हिंदुस्तानी नारी के संसार भर में सर्वाधिक अधिकार दिए हैं। यह अलग बात है कि यहां की महिलाएँ खुद अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं, रही बात शादी की तो दायित्व से मैं आप दोनों को मुक्त करती हूँ।'' मणि अपनी स्थिति बताते हुए माँ को उनकी जिम्मेदारियों से मुक्त कर अपने लिए नई दिशा की मांग करती है। माँ मणि के इस रवैये से नाखुश है।

उपन्यास 'सलाम आखिरी' में मधु जी ने नारी की दयनीय एवं गंभीर स्थिति का चित्रण किया है। नारी को कभी सिंदुर के नाम पर छलावा मिलता है तो कभी समर्पण के नाम पर। ऐसी ही स्थिति का ब्यौरा लेखिका ने अपने उपन्यास में किया है। नायिका सुकीर्ति और माया वेश्या जीवन की त्रासदी को व्यक्त करते हुए नारी की दशा और दिशा के आधार पर अपनी विचारधारा को प्रकट करते हैं। माया अपनी वेदना को प्रकट करते हुए कहती है-''हमारे भाग्य में न खुशनुमा बचपन है, न शांत प्रौढ़ावस्था। हमारे भाग्य में तो सड़क और बांध होती है। वेश्या जीवन के संघर्ष की हकीकत से जुड़े वाक्य पाठक को झकझोर कर रख देते हैं। सभी उम्र के पुरुषों की यौनच्छा को संतुष्ट करने की खातिर वेश्याएं रोज बलि का बकरा बनने को मजबूर हैं। उनके जीवन की बड़ी विडंबना है कि देह के एवज में न तो उनके साथ

सहानुभूति रखी जाती है, न ही साधारण इंसान जैसा सलूक किया जाता है। महज पेट भरने के लिए चंद रुपयों के अलावा कुछ नहीं मिलता। कई मर्तबा बूढ़े जिनके मुंह मैं न दांत, न पेट में आंत, कमर पर जोर नहीं है, ऐसे छैला बनकर वेश्याओं को सताते हैं कि लगता है मजा लेने के चक्कर में मर-मरा न जाएं और पुलिस केस न बन जाए।'' माया ने जीवन जीने के साथ संघर्ष हो किया अपितु अपने आप को उस अंधे कूप में झोंक दिया। जिससे शायद कभी बाहर नहीं आया जा सकता। माया जैसी अनगिनत स्त्रियों का जीवन बड़ी ही त्रासदी पूर्ण है। जीवन जीने के लिए हर पीड़ा, संत्रास को चुप्पी से झेलना होता है- ''हर वेश्या किसी और को वेश्या बनता देखकर ही अपने वेश्या जीवन के हलाहल को झेल पाती है।'' लेखिका ने वेश्या जीवन की पीड़ा को अभिव्यक्त कर नारी की स्थिति को चित्रित किया है।

उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में नारी की छटपटाहट की वेदना को दिखाने का भरसक प्रयास किया है। नारी को हर स्थिति में समझौता करना पड़ता है। नायिका संघमित्रा पढ़ी-लिखी युवती है। आर्थिक अभाव में वह अपनी पढ़ाई छोड़ कर घर के बिजनेस में अपनी प्राथमिकता देती हुई नजर आती है। पिता की अकस्मात मृत्यु ने पूरी परिवार की जड़ें हिला डाली है। संघमित्रा की मां पुरानी-मान्यताओं एवं धर्म के पक्ष में अपनी स्थिति-परिस्थिति के प्रति चलने के लिए विवश है। पूरे परिवार को भी वही सब करने की हिदायत भी देती है। संघमित्रा ऐसा करने से मना करती है। उसे डरा-धमका कर मान्यताओं के विरूद्ध भयभीत करते हुए कहती है- ''नहीं बेटा, हमारे घर पर नागदेवता का श्राप पड़ा हुआ है। हमारे घर ही नहीं, बल्कि पूरे गांव पर ही यह श्राप है कि इस गांव की बेटियां आज के दिन नाग देवता की पूजा करके ही दाना मुंह में धरेंगी और वह भी बासी। कहते हैं कि जमाने पहले, गांव की जाने किस बेटी ने भोर के धुँधलके में, अंगीठी जलाते-जलाते सांप को भी जला दिया था। अग्नि की लपटों में झुलसते सांप ने यह श्राप उस गांव की कुँवारियों को दिया था... जिसने भी नागपंचमी के दिन नाग को नहीं पूजा, पति सुख से वंचित रह जाएगी वह।'' संघमित्रा मां की पुरानी दकियानूसी सोच से इत्तफाक नहीं कर पा रही थी। यह कथा लोगों को डराने, धमकाने या अंधविश्वास के रूप में गढ़ी गई होगी। माँ से वाद-विवाद कर कुछ हासिल तो नहीं था पर यह सोच मुझे परेशान जरूर करने लगी। संघमित्रा उस समय शांत तो हो गई पर मां की बात में सहसा उसके कानों को चुभती रही।

आर्थिक अभाव के कारण नारी को क्या-क्या सहना पड़ता है। सबसे विचित्र बात तो यह है कि नारी ही नारी की दशा समझने में असमर्थ है। वही उसको ऊँचे उठाने के स्थान पर गिराती जाती है। यही क्रम संघमित्रा को पढ़ने के स्थान पर धार्मिक कार्यों में उलझाए रखा। संघमित्रा अगर विरोध करती है तो मां उसे उसके दोष गिनवा कर उसे अपमानित करती है। संघमित्रा अपनी यह दशा देख व्याकुल हो अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है-''आक्रोश और अवसाद से मेरी आँखें भर आई। सामने परीक्षा और कल रामपुरा हाट में लगने वाली पूजा पूर्व की हाट। जाने कब से तैयारी कर रही हूँ मैं जिसके लिए। क्या माँ की आशा के परखच्चे उड़ा दूँ....? पर दो-दो मौतों से ध्वस्त हुई माँ को एक धक्का देना अमानवीय नहीं होगा नहीं मुझे जाना होगा उनके साथ।'' संघमित्रा माँ की परेशानी को देख अपनी पीड़ा को भूल जाती है। माँ का साथ देने के लिए वह अपनी सभी इच्छाओं का गला घोट लेती है। माँ का साथ देते-देते संघमित्रा के मन में माँ के लिए घृणा इस कदर बढ़ जाती है। वह माँ से हर विषय पर तर्क-वितर्क करने के लिए बाध्य हो जाती है। संघमित्रा ने अपनी आकांक्षाओं का साथ तो छोड़ दिया था पर अब माँ छुटकी को भी इसी दलदल में खींचने लगी थी। माँ धर्म के नाम पर अपनी आर्थिक सुख-सुविधाओं की पूर्ति हेतु छुटकी की बलि देना चाहती थी। संघमित्रा ने जब इस बात पर अपनी असहमति जतायी तो माँ बिदक पड़ी और संघमित्रा को कोसने लगी। संघमित्रा माँ को समझाती है पर माँ अपनी हठ से परे नहीं होती। संघमित्रा अपनी चिंता छुटकी के प्रति व्यक्त करते हुए कहती है-''माँ जिस तरह छुटकी के बचपन के खूबसूरत आसमान पर बंदिशें लगा रही थीं, मुझे उसके लिए नए सिरे से चिंता होने लगी थी। काफी दूर तक मानसिक तनाव झेलने के बाद ख्याल आया कि न तो मैं इसे पहाड़ी सुंदरता और विराटता के साथ एकतान हो पा रही हूँ और न ही इन हवाओं की गूँज ही सुन पा रही हूं। जिस पर से दूर होने के लिए मैं इन जंगलों में आई... उसी घर को अभी तक लादे फिर रही हूं... बच्चू थोड़ा काबू... मन को जबरन मन से दूर धकेल मैंने अपने इर्द-गिर्द बहती सुंदरता और गूंजती हवाओं में दिलचस्पी लेनी शुरू की।'' संघमित्रा छुटकी को

देख हैरान और परेशान हो रही थी। खेलने-कूदने की आयु में माँ छुटकी के लिए कैसे-कैसे सपने बुन रही है। संघमित्रा ने विरोध में आवाज उठाई तो माँ संघमित्रा पर ही बरस पड़ी और आक्रोश में व्यंग्य कसने लगी ‘‘मुझे देखते ही चमकती तलवार-सा भी नुकीला हो गया। सुलगती बोरसी-सी भभक पड़ी पे-तु-कमरजली! कैसे संस्कार है तम्हारे? बचपन में तुम बहुत बीमार पड़ गई थी तुम, तो तुम्हें हमने एक कूंजड़े को बेचकर उसी से पांच पैसे में वापस खरीद लिया था। बहुत समय तक हम तुम्हें अपनी बेटी नहीं उस कूंजड़े की बेटी मान पालते रहे थे, जिससे तुम जिंदा रही। जान तो तुम्हारी नहीं गई पर लगता है संस्कार तुम्हारे चले गए। उसी की ही परछाई पड़ गई पर लगता है संस्कार तुम्हारे चले गए। उसी की परछाई पड़ गई तुम पर। पूरी ही भाटा-पत्थर निकली। इतनी बुरी आत्मा को कितनी शांति मली। पर तुम कहीं भी शामिल नहीं हुई। फिर तुम यहां आई ही क्यों?’’ माँ की कड़वी बातें सुन संघमित्रा को धक्का लगा। आत्मा की सारी नसें हिल गई। माँ ऐसे कैसे बोल सकती है। माँ की नजर में मेरे लिए यही भाव है।

लेखिका मधु कांकरिया ने जहां एक ओर नारी पीड़ा की दिशा और दशा को व्यक्त किया है वहीं, अपनी अस्मिता के लिए वह निरंतर संघर्ष भी करती रही है। संघमित्रा ने जहां बचपन से लेकर युवावस्था में कष्ट ही कष्ट झेले वहीं अपनी पहचान बनाने के लिए व्यवस्था के आगे घुटने नहीं टेके। मधु कांकरिया ने नारी संघर्ष और द्वंद्व का रूप संघमित्रा के माध्यम से दर्शाने का प्रयास किया है। संघमित्रा ने माँ और छुटकी से दर्शाने का प्रयास किया है। संघमित्रा ने माँ और छुटकी का साथ छोड़कर अपने आप को संभालते हुए एक सॉफ्टवेयर कंपनी में नौकरी कर ली। नौकरी कर लेने के बाद भी उसका संघर्ष एवं शोषण चलता रहा। कंपनी के अधिकारी उसे किसी ना किसी बात पर उसका तिरस्कार एवं अपमान कर शोषित करते। संघमित्रा ने जब इस विषय पर अपनी प्रतिक्रिया जताई तो उस पर उल्टे सीधे आरोप लगाकर उसे चरित्रहीन कहा। संघमित्रा का विश्वास डगमगाने लगा। कंपनी के सभी सदस्य उसके विरोध में खड़े थे। कंपनी का पीयून संघमित्रा की दयनीय स्थिति को देख उसे समझाने का प्रयास करता है ‘‘अकेली औरत हर जगह मजबूर है... कहाँ तक लड़ोगी इस भेड़िया दुनिया से।’’ संघमित्रा ने अपनी बात रखते हुए बूढ़े पीयून बाबा से कहा-‘‘बाबा आपकी बात सही है कि कितनी नौकरियां बदलूंगी मैं। पर मैं अपनी बात से मजबूत हूं। अपमान की यह रोटी मुझसे तो नहीं निगली जाएगी। जब तक धरती का वह गंदा धब्बा मुझसे माफी नहीं मांग लेता मैं यहां काम नहीं कर पाऊँगी... न्याय का सूरज अगर उगाना होगा तो आसमान की ओर छलाँग मारने की चोट भी खानी ही पड़ेगी।’’ संघमित्रा अपने आत्मसम्मान पर कोई भी धब्बा लगने नहीं देना चाहती थी। सारी जिंदगी इसी सम्मान के लिए तो वह माँ-समाज के आगे बूरी बनी है।

कार्यक्षेत्र में शारीरिक शोषण की समस्या तो आए दिन देखने को मिल जाती है, लेकिन धर्म में भी इस प्रथा ने अपना द्वार खोल लिया है। संघमित्रा की छोटी बहन छुटकी साध्वी जीवन जीने के लिए विवश हो जाती है। माँ ने ऐसा उपक्रम दिया कि इससे बचना मुश्किल था। छुटकी यानि दिव्यप्रभा अपने ही आश्रम के महाराज के प्रति आसक्त थी। मुनि विजयेंद्र भी दिव्यप्रभा के रूप सौंदर्य के प्रति आकर्षण था। आश्रम में मुनि अभय इन दोनों के प्रेम में अपनी कामवासना की पूर्ति द्वारा दिव्यप्रभा के व्यक्तित्व को ही समाप्त कर देता है। अभय दिव्यप्रभा के साथ छल करके उसे एकांत में ले जाकर अपनी वासना की पूर्ति करता है और कहता है-‘‘बस आज रात भर के लिए मुझे भी उफनती नदी में डुबकी लगाने दो, कल विजयेंद्र मुनि के पास मैं स्वयं तुम्हें छोड़ आऊँगा। कोई जान तक नहीं पाएगा। जब धर्म के छतनार वृक्ष विजयेंद्र मुनि भी कामदेव के हाथों घायल होकर अधर्म में डुबकी लगा सकते हैं, कामनाओं के कबूतरों को दाना चुगा सकते हैं तो मैं क्यों नहीं ? थोड़ा पान पत्ता मुझे भी चढ़ा दो देवी। वहां तो सारी उम्र ही तुम्हें चढ़ाते रहना है। देवी बस आज रात तुम मेरी कामाग्नि को शांत कर दो। साध्वी जीवन में तुम वैसे भी स्खलित हो चुकी हो... चाहे वह विजयेंद्र मुनि की मर्माती बेकाबू देह हो, चाहे मेरी।’’ धर्म के ठेकेदार ही धर्म की आड़ में ऐसा दुष्कर्म करेंगे तो नारी कहां सुरक्षित है। लेखिका ने धर्म और आर्थिक अभाव में पिसती नारी की करूण वेदना का चित्रण किया है। वहीं उपन्यास खुले गगन के लाल सितारे में मणि प्रेम के रूप-स्वरूप की व्याख्या करते हुए अपना मत करती है -‘‘प्रेम न उद्दाम वेग है, न आत्मविस्मृति या तल्लीनता के चरम क्षण। छक्कर चू निस्पद पड़ी काया के सिरहाने तकिया पढ़ाते हाथ प्रेम है। ठिठुरती ठंड में गर्म खाने के लिए ठिठुरती प्रतीक्षारत निगाहें हैं प्रेम गहन दुख के क्षणों में आंखों के झिलमिलाते आंसूओं के बीच विश्वास सी जिसकी छवि कौंध

जाए.... वही इसका पात्र।'' मणि आखिर के परिवार के दबाव में तो शादी कर लेती है पर अपने प्यार को नहीं भूल पाती। दांपत्य जीवन में आई कठिनाइयों को झेलते हुए अपने प्रेमी इंद्र के साथ बिताए पलों को याद कर खो जाती है। जिंदगी में जो कुछ भी उसे मिला उसका उसे कोई गिला नहीं पर जो खो गया उसके प्रति उसकी वेदना उसे रह-रहकर व्याकुल करती है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि मधु कांकरिया ने अपने उपन्यासों में नारी के संघर्ष और द्वंद्व के साथ-साथ धर्म के खिलाफ अपनी विरोधी विचारधारा को पात्रों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। नारी की स्थिति-परिस्थिति व्यवस्था के विरोध में उलझी रहती है। सामाजिक-धार्मिक और राजनीतिक के चक्रव्यूह में फंसी विडंबनाओं एवं आडंबरों का विरोध करती नारी की छवि को दिखाने का प्रयास किया है। आधुनिक जीवन के बनते-बिगड़ते संबंध को उकेरा है।

Computer phobia among primary school teachers with respect to gender and locality

RESEARCH

शोध

Abstract

The present study was undertaken to investigate the computer phobia among primary school teachers. For this purpose,a sample of 200 primary school teachers of Sri Muktsar SahibDistrict of Punjabwas chosen. Genderwise and locality wise distribution of teachers was also done. The data was analyzed and interpreted on the basis of mean, S.D. and t-test. The findings of the study revealed that there is no significant difference of computer phobia in relation to gender and locality.

Dr. Sunita Arya

Kalgidhar Institute of Higher Education

Kingra, Malout (Punjab)

INTRODUCTION

The role of present day teacher has become very challenging, complex and multifaceted,which requires preparation on the part of teachers in both ways-before entering in profession and after entering in to job. In this era of globalization when knowledge driven economy and ICT are strongly emphasized, there is need for paradigm shift in the teaching learning process and that can be done if the curriculum allows us to do so (Gupta & Mittal, 2011).The main goal of ICT in education is to enhance teaching and learning quality. A number of studies have shown a wide range of factors which influence educators' utilization of ICTs in their teaching. Computer Phobia is argued to be a major deterrent to the utilization of ICT by educators. Technological advancement has reduced the world into tiny space. In other world, it is something that has really connected people living all over the world and has turned the planet earth into a global village. These technologies assist teacher and facilitate learning. Grabe and Grabe (1998) even reported a recent situation in which computers were not used effectively in teaching practice, due

in part to teachers' attitudes and fears regarding this relatively new technology.Saxena and kukreti (2005) also indicated that 70 percent teacher educators accepted that they never used the computer and internet facilities in the classroom teaching. While Lunenburg & Ornstein (1996) found that teachers felt anxiety about potentially losing their authority. In India most of the primary teacher come from rural areas and computer technology to a large extent is English based. In today's world the use of computers has become a part of daily life of an individual. It has almost become an extension of the self rather than a mere tool. In this context if primaryteachers have computer phobia, it affects their own teaching as well as the ability of the learner to learn, apart from being a social handicap. If teachers are unsure of their computer knowledge and skills, they can be cautious about implementing CALL in the classroom teaching for their respective students (Chen, 2012). Keeping in view of above discussion it can be said that the computer is an important tool for making classroom teaching effective. But very less number of teachers is capable for using computers. In the present investigation an effort has been made to know the level of computer phobia among primary teachers.

Objectives of the study

1. To study the level of computer phobia of primary school teachers with respect to their gender (male and female).
2. To study the level of computer phobia of primary school teachers with respect to their Locality (rural and urban).

Hypotheses of the study

1. There will no significant difference between the level of computer phobia of primary school teachers with respect to their gender (male and female)
2. There will no significant difference between the level of computer phobia of primary school teachers to their locality (rural and urban)

Delimitation of the study

The study was confined to a sample of 200 primary school teachers selected from government primary schools of Muktsar Sahib(pan jab).

Methodology

In the present study descriptive method of research was used.

Sample

The study was confined to a sample of 200 primary school teachers selected from government and primary schools of Muktsar Sahib(pan jab).Out of 200 teachers 100 male and 100 female teacher and 100 rural and 100urban were taken.

Tool Used

The computer phobia scale by Rajasekar and P.Vaiyapuri Raja (2006) was used.

Statistical Techniques

Mean Standard Deviation, "t" value were used for analysis and interpretation of data.

Analysis and discussion

Table-1: computer phobia among primary school teachers with respect to their Gender

Group	N	Mean	S.D.	t-value	Result
Male	100	50.48	7.53	0.31	Not
Female	100	50.80	7.03		

Table- 1 indicates that calculated t- value for ascertaining the significant difference in mean score of male and female primary school teachers on computer phobia was found to be 0.31, which is not significant even at 0.05 level of confidence. It means that male and female primary school teachers do not differ significantly on computer phobia.

Table-2: computer phobia among primary school teachers with respect to their locality

Group	N	Mean	S.D.	t-value	Result
Rural	100	50.83	7.54	0.369	Not
Urban	100	50.45	7.03		

Table- 2 indicates that calculated t- value for ascertaining the significant difference in mean score of rural and urban primary school teachers on computer phobia was found to be 0.369 which is not significant even at 0.05 level of confidence. It means that rural and urban primary school teachers do not differ significantly on computer phobia.

Education implications

1. Primary teachers should be motivated to prepare lesson plans with the help of the computer
2. so that computer skills can be developed among them.
3. More and more access and practical knowledge of computer operations should be provided to
4. reduce computer phobia among primary teachers.
5. By organizing capsule programs and computer workshops, hands-on experience can also help
6. to overcome computer phobia.

Bibliography

- Chen, k. (2012). Elementary EFL Teachers' Computer Phobia and Computer Self-efficacy in Taiwan, TOJET: The Turkish Online Journal of Educational Technology , April 2012, volume 11 Issue 2.
- Dahiya, S.S. (2008). Educational Technology towards Better Teacher Performance, Shipra Publication Delhi, page 237
- Gupta, D. & Mittal R. (2011). Secondary Pre-service Teachers Attitude towards their teacher preparation curriculum, Educational Quest 2 (3): 2011:335-340.
- John Todman., (2000) Gender differences in computer anxiety among University entrants since 1992, Computers and education.
- Kumaran. D and Selvaraj. K., (2001) A study of cognitive and affective computer attitude of Teachers, Journal of All India Association for Educational Research.
- Saxena, M.K. & Kukreti, B.R. (2005). Emerging Technological Advancement in Learning World and Challenges for Leadership Profiles in Teacher Training Institutions", Proceedings of ICLORD – 2005 (International Conference on Learning Organization in a Learning World), King Mongkut's University of Technology, Thonbury, Bangkok (THAILAND).

www.transframe.in

ISSN 2455-0310